ग्रन्थरत्नषट्कम्

(१) मन्त्रार्थदीपिका (२) कामगायत्रीव्याख्या (३) अग्नि-
पुराणान्तर्गतगायत्रीव्याख्याविवृतिः (४) सूत्र-
उपासनावैष्णवपूजाविधिः (५) श्रीयुग-
लाष्टकं (६) श्रीकृष्णप्रेमामृतम् ॥

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तिविरचिता मन्त्रार्थदीपिका,
श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपादरचिता कामगायत्री-
व्याख्या, श्रीपादजीवगोस्वामिरचिता अग्नि-
पुराणान्तर्गतगायत्रीव्याख्याविवृतिः,
श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितः सूत्र-
उपासनावैष्णवपूजाविधिः
श्रीपादजीवगोस्वामि-
विरचितं युगलाष्टकं,
श्रीपादगोपालभट्ट
गोस्वामिविरचितं
श्रीकृष्णप्रेमामृतम् ॥

प्रथमावृत्ति १०००
झूलन तीज संवत् २०१२
नौछावर ॥)

प्रकाशक—
कृष्णदास बाबाजी
(कुसुमसरोवरवाले) मथुरा

सुभाष स्कूल प्रेस, बलटीला, मथुरा ।

समर्पणपत्रम्

भज निताइ गौर राधे श्याम।
जप हरेकृष्ण हरे राम॥

सम्प्रदाय हितैच्छुक, श्री श्रीराधारमणचरणदासदेव
(बडबाबाजी) महाराज के कृपापात्र साथी,
कुसुमसरोवर गवालियर मन्दिर के महन्त,
नित्यधामप्राप्त, मेरे काका गुरु
श्रीश्रीउद्धारणदासबाबाजी
महाराज के प्रीत्यर्थमें
यह "ग्रन्थरत्नषटकं"
समर्पित है।

---o---

विनीत—कृष्णदास।

पुस्तक मिलने का पता—

कृष्णदासबाबाजी (कुसुमसरोवर वाले)
श्रीमदनमोहनजी का मन्दिर, वृन्दावन-
दरवाजा, मथुरा।

—:दो शब्द:—

व्रजविहारी नन्दनन्दन श्रीगोविन्द की मधुर भाव से उपासना सर्वोपरि मानी जाती है तथा वे श्रीगोविन्द अखिल रसों के विषय स्वरूप होने पर भी मुख्यतः रसराज अप्राकृत दिव्य-शृङ्गार स्वरूप में भक्तों के द्वारा उपासित होते हैं। ब्रह्म रुद्र तथा सनक सम्प्रदाय के वैष्णवगण गोपालमन्त्र से दीक्षित होते हैं तथा गुरुपरम्परा प्राप्त उस गोपालमन्त्र को ही सर्वाधार मानते हैं। जब तक कोई गोपाल-मन्त्र से दीक्षित नहीं होता है तब तक वह वैष्णव करके नहीं माना जाता है तथा उसकी गोविन्द-उपासना कुञ्जर शौच की भाँति हो जाती है और भी सेवा-पूजादि किसी विषय में उस भक्त का अधिकार नहीं होता है। गोपालतापनी श्रुति, गौतमीय तन्त्र, क्रमदीपिका, हरिभक्तिविलासादि शास्त्र में गोपालमन्त्र का विवरण विस्तार रूप से मौजूद है। उन सब वैष्णवशास्त्रों में उपासना का अधिकार रख कर गोपालमन्त्र के साथ कामबीज-कामगायत्री की संयोजना की गई तथा गोपालमन्त्र की भाँति उन को भी मूलाधार रूप में रखा गया। दोनों मन्त्र के प्रारम्भ में कामबीज को भी उनके बीज रूप में संयोजित किया गया। प्रेमावतार श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ने भी गोपालमन्त्र में दीक्षित होकर जीव जगत् को मधुर उपासना का पाठ पढ़ाया तथा कामबीज-कामगायत्री को महान महत्ता दी। प्रभु का ऐसा उपदेश था कि कामबीज-कामगायत्री के बिना किसी भी प्रकार उपासना नहीं बन सकती। राधाभाव में विभावित आपने जिस प्रकार कामबीज कामगायत्री की परम व्याख्या का गान किया है उसी प्रकार उस गान को श्रीचरितामृतकार श्रीकृष्णदासकविराज गोस्वामी जी ने उक्त ग्रन्थ में मधुर रूप से वर्णन किया है। जो कि चक्रवर्ती महोदय की व्याख्या में मौजूद है। स्थानाभाव के कारण उसका पुनः उल्लेख नहीं किया गया है। गौड़ीयवैष्णव गुरुमुख

से गोपालमन्त्र के साथ कामगायत्री को ग्रहण करते हैं तथा उपासना क्षेत्र में उनको सर्व्वोपरि महत्ता देते हैं। कामगायत्री के विना श्रीराधागोविन्द की महान् उपासना फल्गुरूपा होजाती है। कामबीज-कामगायत्री के साथ गोपालमन्त्र की मधुर उपासना ही सर्वोपरि है ऐसा गौड़ीयसिद्धान्त है। चरितामृत में कहा है–

वृन्दावने अप्राकृत मदनमोहन।
कामगायत्री कामबीजे जाँर उपासन॥

अर्थ ज्ञान के विना मन्त्र सब निष्फल होते हैं इसलिये उनको सजीव करने के लिये शास्त्र ग्रन्थों में आचार्य्यगण बहुस्थल में व्याख्या कर गये हैं। उक्त कामबीज-कामगायत्री मन्त्र को फलक्षेत्र में लाने के लिये गौड़ीय गोस्वामियों ने भी अनेक स्थल में अनेक रूप से उनकी व्याख्या की। हरिभक्तिविलास के तृतीयविलास में तान्त्रिकी-सन्ध्याविधि विषय पर कहा गया है—

ध्यानोद्दिष्टस्वरूपाय सूर्य्यमण्डलवर्त्तिने।
कृष्णाय कामगायत्र्या दद्यादर्घ्यमनन्तरम्॥
अथार्कमण्डले कृष्णं ध्यात्वैतां दशधा जपेत्।
क्षमस्वेति तमुद्वास्य दद्यादर्घ्यं विवस्वते॥

वहाँ सनत्कुमारसंहिता के वचन उठा कर कामगायत्री की उद्धृति की गई है॥

रासपञ्चाध्यायी के तृतीयश्लोक 'जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्' की श्रीपादजीवगोस्वामी कृत "वैष्णवतोषिणी" व्याख्या में–"अत्र श्लेषेण कामबीजं जगाविति रहस्यम्"। अर्थान्तर में कामबीज का गान किया यह रहस्य है॥

श्रीचक्रवर्त्ती महोदय ने "सारार्थदर्शिनी" टीका में भी एसा कहा है–"श्लेषेण कलं ककारलकारं वामदृशामिति लुप्तविभक्तिकं पदं वामदृक् चतुर्थ स्वरः तया सह पञ्चदशस्वरं कामबीजं जगाविति

रहस्यं मनसः आकर्षकत्वान् स्वस्वरूपभूत महामन्मथमन्त्रमित्यर्थः" । अर्थान्तर में क्लं ककार लकार हैं, वामदृक् यह लुप्त विभक्तिक पद है। अर्थात चौथास्वर दीर्घ ईकार से युक्त करने पर, विन्दु अनुस्वार को जोड़ने पर कामबीज क्लीं निकलता है यह श्रीजीवपाद के रहस्य पद का अभिप्राय है। मन का आकर्षण करने के कारण अपने स्वरूपभूत महामन्मथमन्मथ अर्थात् कामगायत्री समझनी चाहिये ॥

वहु अनुसन्धान के पश्चात् श्रीचक्रवर्ती महोदय के द्वारा विरचित एक व्याख्या तथा श्रीपादप्रबोधानन्दसरस्वती जी के द्वारा विरचित एक व्याख्या मुझे प्राप्त हुई। जो कि सानुवाद प्रकाशित होकर उपासकों के समक्ष मौजूद हैं। चक्रवर्ती जी की व्याख्या गौड़ीयवैष्णव समाज में प्रसिद्ध है तथा वह वङ्गाक्षर में मुद्रित भी हो गयी है। सरस्वती जी की व्याख्या-श्रीनीलमणिग्रंथागार वृन्दावन से, साधुमाता के आश्रम वृन्दावन से परम हितैषी कृष्णानन्ददास जी के द्वारा दूसरी कापी, श्रीयुक्त पूज्य अतुलकृष्णगोस्वामी जी के द्वारा (वृन्दावन) उनके ग्रंथागार से तीसरी प्रति मुझको प्राप्त हुई। मैंने तो इन तीनों प्रतियों को मिला कर यथा साध्य एक प्रेस कापी बनाई। श्रीपादजीवगोस्वामी विरचित "आग्नेयस्थ गायत्री-व्याख्याविवृतिः" पहले श्रीयुक्त हरिदासदास नवद्वीप निवासी के द्वारा प्रकाशित होगई है। श्रीमद्रूपगोस्वामी विरचित "सूत्रउपासना-वैष्णवपूजाविधिः" की प्राचीन प्रति मेरे पास मौजूद है। रागानुगा भक्ति के उपासकों का यह परम उपादेय ग्रन्थ है तथा सूत्ररूप है।

श्री श्रीजीव गोस्वामि विरचित "युगलाष्टक" तथा श्रीपाद गोपालभट्ट गोस्वामी महोदय के द्वारा विरचित "श्रीकृष्णप्रेमामृत" ग्रन्थ की प्राचीन कापी-श्रीनीलमणि ग्रन्थागार, वृन्दावन से प्राप्त हुई है। कृष्णप्रेमामृत ग्रन्थ तो श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्वरूप है। इसमें चार प्रकरण हैं। वसनचौर्य्य केलि-वर्णन, भारवहनखण्ड, पार-

खण्ड, दानखण्ड हैं। श्रीपादग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ की रचना के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के हृदयगत मधुर भाव का उटंकन किया है तथा मधुर भाव की मधुमय उपासना की पराकाष्ठा जगत् में दिखलाया है। वसनचौर्य्यलीला का वर्णन श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में मौजूद है। भागवत के टीकाकार श्रीधरस्वामी चरण ने "व्रजविहारस्तोत्र" में नौका के द्वारा जमुनापार लीला का वर्णन करते हुए कहा है—

"जीर्णा तरिः सरिदति गभीरनीरा,
बाला वयं सकलमित्थमनर्थ हेतुः।
निस्तारबीजमिदमेव कृशोदरीणां
यन्माधवस्त्वमसि सम्प्रति कर्णधारः॥

दानलीला का वर्णन ग्रन्थों में प्रसिद्ध है।

वृन्दाबननिवासी पूज्य गोस्वामी श्रीयुक्त रासविहारी शास्त्री महोदय की गवेषणा से, तथा भक्तवर परम हितैषी श्रीमान् गोपालदास जी वीकानेर निवासी के आग्रह से और गोस्वामी ग्रन्थ के मर्म्मज्ञ, पूज्य गोस्वामी दामोदरलाल जी वृन्दाबन निवासी के प्रोत्साह से इस "ग्रन्थरत्नषटकम्" का प्रकाशन में मैं समर्थ हुआ। आशा है गोविन्द-उपासक वैष्णव समाज इसका पठन पाठन के द्वारा चिरवाधित करेगा॥

विनीत-कृष्णदास।

———

मन्त्रार्थ दीपिका

श्री गौराङ्ग-प्रसादेन वीजस्य ह्यर्थदीपिका ।
विश्वनाथचक्रवर्त्ती नाम्नापि क्रियते मया ॥ १

श्री राधाकृष्णयोर्वीजाभिधानम्—रासोल्लासतन्त्रे यथा—

कामवीजात्मकः कृष्णो रतिवीजात्मिका राधा।
तयोः संकीर्त्तनादेव राधाकृष्णौ प्रसीदतः ॥ २

तत्रादौ कामवीजार्थः—

कामानां स्वाभिलाषाणां च वीजं यद्वा कामोद्दीपनस्य वीजं अथवा कामैः पूर्णं वीजं कामवीजम् ॥ ३ ॥

कामवीजलक्षणम्—गौतमीयतन्त्रे यथा—

विना बीजेन मन्त्राणां विफलं जायते फलम् ।
पञ्चालङ्कारसंयुक्तं वीजन्तु परमाद्भुतम् ॥
ककारश्च लकारश्च ईकारश्चार्द्ध चन्द्रकः।
चन्द्रविन्दुश्च तद्युक्तं कामबीजमुदाहृतम् ॥ ४ ॥

श्री गौराङ्ग महाप्रभु की कृपा से बिश्वनाथ चक्रवर्तो नाम से प्रसिद्ध मैं बीजार्थ प्रकाशकारी मन्त्रार्थदीपिका की रचना करता हूँ। श्री रासोल्लास नामक तन्त्र में श्री राधा-कृष्ण दोनों का रति, कामबीज स्वरूप से वर्णन है यथा—श्रीकृष्ण कामबीज आत्मक तथा श्री राधा रतिबीजात्मिका हैं। उन दोनों वीज के संकीर्त्तन से श्री राधा कृष्ण प्रसन्न होते हैं ॥ १-२ ॥

पहले कामवीज का अर्थ कहते हैं—कामों का अर्थात् निज अभिलाषाओं का वीज यह कामबीज है। अथवा काम उद्दीपन का वीज कामवीज है। किम्बा कामों से परिपूर्ण वीज कामवीज है ॥ ३ ॥ कामवीज का लक्षण गौतमीयतन्त्र में इस प्रकार है यथा—वीज के बिना मन्त्रों की विफलता है। पाँच अलङ्कार से संयुक्त यह कामबीज परम अद्भुत होता है। ककार, लकार, ईकार,

क्लीं मिति कामवीजमेकाक्षरम् ॥

गौतमीयतन्त्रे अस्यार्थो यथा–

क्लींङ्कारादसृजद्विश्वमिति प्राह श्रुतेः शिरः ।
लकारात् पृथिवी जाता ककाराज्जलसम्भवः ॥
ईकाराद्वन्हिरुत्पन्नो नादाद्वायुरजायत ।
विन्दोराकाशसम्भूतिरिति भूतात्मको मनुः ॥ ५

वृहद्गौतमीयतन्त्रे –

ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
ईकारः प्रकृती राधा नित्यवृन्दावनेश्वरी ॥
लश्चानन्दात्मकं प्रेमसुखं तयोश्च कीर्त्तितम् ।
चुम्बनानन्दमाधुर्य्यं नादविन्दुः समीरितः ॥६

अथ कामवीजस्य श्रीविग्रहात्मकत्वम्—सनत्कुमारसंहितायाम्-

अथ श्रीकामवीजस्य शरीरं विग्रहात्मकम् ।
श्रीकृष्णशरीराभिन्नान्यक्षराणि क्रमात्शृणु ॥

अर्द्धचन्द्र, चन्द्रविन्दु ये पञ्चालङ्कार हैं। इन से युक्त कामवीज कहा जाता है ॥ ४ ॥

"क्लीम्" यह एकाक्षर कामवीज है। गौतमीयतन्त्र में इसका अर्थ इस प्रकार है–भगवान ब्रह्मा ने क्लींङ्कार से विश्व की सृष्टि की है, ऐसा उपनिषद् भाग में कहा गया है। लकार से पृथिवी, ककार से जल, ईकार से अग्नि, नाद से वायु, विन्दु से आकाश उत्पन्न हुआ है। यह मन्त्र पञ्च भूतात्मक है ॥ ५ ॥

वृहद्गौतमीयतन्त्र में इस प्रकार कहा गया है। ककार में सच्चिदानन्द विग्रह परम पुरुष श्री कृष्ण हैं। ईकार का स्वरूप परमा प्रकृती, नित्यस्वरूपा, वृन्दावनेश्वरी श्री राधिका हैं। लकार का स्वरूप दोनों का आनन्दात्मक प्रेम सुख पदार्थ है। नाद-विंदु से चुम्बनानन्दरूप माधुर्य्य वस्तु कही जाती है ॥ ६ ॥

ककारेण शिरो भालो भ्रूर्नासा नेत्रकर्णकौ।
लकारेण भवेद्गण्डस्तदन्तो हनुरूपकः॥
चिबुकोऽथ ग्रीवा चैव कण्ठः पृष्ठश्च सुव्रत।
ईकारः स्कन्धो बाहुश्च कफोणिरङ्गुलीनखः।
अर्द्धचन्द्रो वक्षस्तुन्दः पार्श्वौ नाभिः कटिस्तथा।
चन्द्रबिन्दावुरुजानुर्जंघा गुल्फश्च पादकः।
पार्ष्णिश्चाप्यंगुली चैव नखेन्दुरपि नारद!
इति विग्रह-रूपश्च कामबीजात्मको हरिः॥

तत्रैव— बीजाक्षरं पञ्च पुष्पबाणतुल्यं क्रमात् शृणु।
ककारश्चाम्रमुकुलो लकारश्चाशोकः स्मृतः॥
ईकारो मल्लिकापुष्पं माधवी चार्द्धचन्द्रकः।
विन्दुश्च वकुलपुष्पमेते वाणाः स्युरेव च॥ ८

कामबीज श्री कृष्ण विग्रह रूप ऐसा सनत्कुमारसंहिता का कथन है-अनन्तर कामबीज विग्रहात्मक है इसका वर्णन करते हैं। कामबीज के अक्षर सब श्री कृष्णविग्रह से अभिन्न है। क्रम से सुनो—ककार से मस्तक, भाल, भ्रू, नासिका, नेत्र तथा कर्ण हैं। लकार में दोनों गण्ड, हनु (ठोढ़ी), चिबुक, ग्रीवा, कण्ठ, पृष्ठ-देश हैं। इकार स्कन्ध, बाहु, कौणि, अङ्गुलियाँ, नखराजि हैं। वक्ष, उदर, दोनों पार्श्व, नाभि, कटि ये अर्द्धचन्द्र स्वरूप हैं। उरु, जानु, जंघा, गुल्फ (टकुना), पाद, पार्ष्णि (तलुवा), अङ्गुलियाँ, नखचन्द्र ये चन्द्रविन्दु स्वरूप हैं। हे महमना नारद! इस प्रकार श्री हरि-विग्रह कामबीजात्मक है। वहाँ और भी कहा गया है, यह बीजाक्षर काम के पाँच पुष्पबाण तुल्य है। क्रम से सुनो। ककार से आम्र मुकुल, लकार से अशोक, ईकार से मल्ली (चमेली); अर्द्धचन्द्र से माधवी, विन्दु से वकुल पुष्प है। इस प्रकार यह अक्षर पुष्प बाण स्वरूप है॥ ८॥

कामगायत्र्यर्थः-

गायत्री सा महामन्त्रः कामपूर्व्वाथ कथ्यते ।
साधका यां गृहीत्वैव जायन्ते व्रजमण्डले ॥ ६

कामबीजेन सह संयुक्ता या गायत्री सा कामगायत्री। यद्वा कामबीजस्य या गायत्री सा काम-गायत्री। अस्याः उपास्यः (साध्यः) देवः शृङ्गाररसराजस्वरूपाभिन्नो मदनः श्रीकृष्णो नन्दात्मजः। अस्य धाम बृन्दावनमेव ॥ १० ॥

कामगायत्री लक्षणम्-सनत्कुमारसंहितायाम्-

आदौ मन्मथमुद्धृत्य कामदेवपदं वदेत् ।
आयान्ते विद्महे पुष्पबाणायेति पदं ततः ।
धीमहीति तथोक्त्वाथ तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ॥ ११

अब कामगायत्री का अर्थ कहते हैं-वह कामपूर्व्वा गायत्री अर्थात् कामगायत्री महामन्त्र करके कही जाती है। साधक सब जिस का आश्रय कर व्रजमण्डल में जन्म लेते हैं अर्थात् परिकर रूप सेवायोग्य शरीर प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

कामबीज के साथ संयुक्ता जो गायत्री है वह कामगायत्री है। अथवा कामबीज की जो गायत्री वह कामगायत्री है। इस का उपास्य अर्थात् साध्यवस्तु देवाधिदेव शृङ्गार-रसराज स्वरूप से अभिन्न अर्थात् अप्राकृत रसराज-शृङ्गार स्वरूप, नन्दनन्दन, श्रीकृष्ण हैं। इन का धाम श्री बृन्दावन है ॥ १० ॥

सनत्कुमारसंहिता में कामगायत्री का लक्षण इस प्रकार कहा गया है। पहले मन्मथ अर्थात् काम शब्द का उद्धार कर पश्चात् कामदेव पद का प्रयोग करें। उसे आय शब्द से संयुक्त कर के उच्चारण करें। अर्थात् "क्लीम् कामदेवाय" इस प्रकार कहें। पुनः "विद्महे पुष्पबाणाय" इस प्रकार कह कर "धीमहि" का संयोग करें। उसके अनन्तर "तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्" का प्रयोग करें। इस प्रकार करने पर कामगायत्री निष्पन्न होती है ॥ ११ ॥

क्लींमिति वेणुमाधुर्य्येण श्रीराधिकादीनां मनो हरणात्। कामदेवा-येति लीलामाधुर्य्येण श्रीराधिकादीनां विवेकहरणात्। पुष्पवाणा-येति लावण्यगुणमाधुर्य्यादिभिः श्रीराधिकादीनां सम्भोगरसोद्दी-पनात् ॥ १२ ॥

कामसंबंधानुगयोः कामानुगायामेवानया गायत्र्या उपास्यते। कामान् स्वाभिलाषान् दीव्यति प्रकाशयति। यद्वा कामेन स्वाभिलाषेण दीव्यति क्रीडति यः स कामदेवस्तस्मै कामदेवाय विद्महे जानीमहि। किम्भूताय? पञ्चपुष्पाण्येव पञ्च कामवीजाक्षराणि पञ्चवाणा अस्त्राणि शार्ङ्गधनुर्गुणपञ्चकेषु यस्य स पुष्पवाणस्तस्मै पुष्पवाणाय वयं धीमहि ध्यायेम, गौरवार्थे वहुवचनम्। एवं स्वरूपो यस्मात्तस्मा-दनङ्गः व्रजस्थितो नवोऽप्राकृतः कन्दर्पो नवीनमदनः, कामवीजका-

---

वेणुमाधुर्य्य से श्री राधिकादि व्रजबालाओं के मन का हरण करने के कारण "क्लीम्" यह सिद्ध होता है। "कामदेवाय" यह पद लीला माधुर्य्य से श्री राधिकादि व्रजवालाओं का विवेक हरण के कारण सिद्ध हुआ है। लावण्य-गुण-माधुर्य्यादियों से उन सब का सम्भोग-रसानन्द उद्दीपन के कारण "पुष्पवाणाय" पद का प्रयोग है ॥ १२ ॥

सम्वन्ध तथा अनुगा में काम शब्द का तात्पर्य्य है। कामा-नुगा अर्थात् रागानुगा में ही इस गायत्री के द्वारा उपासना होती है। कामों को अर्थात् निज अभिलाषों को "दीव्यति" अर्थात् प्रकाश करता है। अथवा निज अभिलाष के द्वारा जो क्रीड़ा करता है, वह कामदेव है। उस कामदेव के लिये "विद्महे" अर्थात् जानते हैं। वह कामदेव किस प्रकार का है? कहते हैं-पञ्चपुष्प की भाँति पञ्च कामवीजाक्षर ही पञ्च अस्त्र जिस के वह पुष्पवाण है, उस पुष्पवाण के लिये हम सब धीमहि अर्थात् ध्यान करते हैं। यहाँ गौरवार्थ में वहु वचन का प्रयोग है। पञ्च

मगायत्रीभ्यां यस्योपासना तयोर्य एवोपास्यः स एवात्मपर्य्यन्त सर्व्वचित्ताकर्षकोऽसमोर्द्ध रूपः श्यामो रसमयमूर्त्तिः, शृङ्गाररस-राजविग्रहो नो अस्मान् प्रचोदयात् प्रकर्षेण चोदयात् प्रसीदतु-निजदास्ये नियोजयतु इति ॥१३॥

एतानि सार्द्धचतुर्व्विंशतिरक्षराणि सार्द्ध चतुर्व्विंशतिश्चन्द्रा भवन्ति। ते च श्रीकृष्णस्याङ्गे उदिताः सन्तः त्रीणि जगन्ति काममयानि कुर्व्वन्ति। ककारादि तकारान्तानि तान्यक्षराणि मुखगण्डललाटादि—करचरणान्तान्यङ्गानि दक्षिणादिक्रमरूपेण ज्ञेयानि ॥ १४ ॥

अस्त्र का प्रयोग शार्ङ्ग धनु के गुण पञ्चक में होता है। इस का तात्पर्य्य यह है कि कामवीज के अक्षर पाँच पुष्पों में प्रयोजित होते हैं। ये पाँच पुष्प शार्ङ्ग धनु के गुणपञ्चक में अस्त्ररूप माने जाते हैं। इस प्रकार स्वरूप जिसका है वह अनङ्ग है। अर्थात् व्रज में विराजमान नवीन मदन है। तात्पर्य्य-व्रजविहारी, अप्राकृत कन्दर्प स्वरूप नन्दनन्दन हैं। जिनकी उपासना कामवीज कामगायत्री दोनों से होती है। कामवीज-कामगायत्री के उपास्य स्वरूप वे आत्म पर्य्यन्त सब के चित्ताकर्षक असमोर्द्ध रूप अर्थात् जिन के रूप की न समानता है न ऊर्द्धता है, श्यामसुन्दर, रसमय मूर्त्ति स्वरूप, शृङ्गार रसराज विग्रह नन्दनन्दन हैं। इस प्रकार वे हम सब के लिये प्रकर्ष से प्रसन्न हों अर्थात् हम सब को निज दास्य में नियो-जित करें ॥ १३ ॥

कामगायत्री में साढ़े चौवीस अक्षर होते हैं। ये साढ़े चौवीस अक्षर साढ़े चौवीस चन्द्रस्वरूप हैं। वे साढ़े चौवीस चन्द्र श्री कृष्ण विग्रह में उदित हो कर तीन जगत् को काममय करते हैं। चन्द्रोदय होने पर जगत् में काम का उद्दीपन स्वभाव सिद्ध है। ककार से आदि कर तकारान्त पर्य्यन्त वे साढ़े चौवीस अक्षर

गायत्र्यक्षराणां चन्द्रत्वनिरूपणं शृणु–

एषामप्यक्षराणां तु चन्द्रत्वे निर्णयं शृणु।
मुखेऽप्येकं विजानीयाद्गण्डयोर्द्वौ तथैव च॥
ललाटे चार्द्धचन्द्रं वै तिलकं पूर्णचन्द्रकम्।
पाण्योर्नखा दश प्रोक्तास्त्वक्षराणि मनोभुवः॥
पादाब्जयोस्तथा ज्ञेया नखचन्द्रा दश क्रमात्।
अर्थो विज्ञेय इत्थं वै गायत्र्याश्च मनीषिभिः॥
क्रमाच्चन्द्रान् विजानीयात् कादितन्ताक्षराणि तु।
दक्षिणादिक्रमेणैव क्रमस्तेषां सुसम्मतः॥१५॥

अत्रापि भो वैष्णवाः! मम लेखन वृत्तान्तं यूयं शृणुत। यथा श्री चैतन्यचरितामृते श्रीकृष्णदासकविराज गोस्वामिना प्राकृत-

श्री कृष्ण के मुख-गण्ड-ललाटादि से लेकर कर-चरणान्त पर्य्यन्त साढ़े चौवीस अङ्ग स्वरूप हैं। दक्षिणाङ्ग क्रम से उनकी गणना है॥ १४॥

कामगायत्रि के अक्षरों का चन्द्र स्वरूप में निरूपण इस प्रकार है– सुनो। इन अक्षरों का चन्द्र स्वरूप में कहाँ कहाँ किस प्रकार से स्थित है उसे कहते हैं। मुख में एक, दोनों गण्ड में दो, ललाट में अर्द्ध चन्द्र, ललाट में तिलक पूर्ण चन्द्र एक, दोनों हाथों के दस नख दस चन्द्र इस प्रकार साढ़े चौदह चन्द्रमा हुये। पुनः चरण कमलों के दस नख दस चन्द हैं। सर्व्व समेत साढ़े चौवीस चन्द्रमा क्रम से श्रीकृष्ण विग्रह में उदय होते हैं। बुद्धिमानों के द्वारा कामगामत्री की इस प्रकार व्याख्या की जाती है। अर्थात् ककारादि से लेकर तकारान्त पर्य्यन्त साढ़े चौवीस अक्षर श्री कृष्ण के दक्षिणाङ्ग क्रम से चन्दस्वरूप से बिराजित हैं। यह सुसम्मत है॥ १५॥

अब व्याख्याकार श्रीचक्रवर्ती जी से इस विषय में जो बात बीती है उसे कहते हैं–अहो वैष्णवगण! इस विषय में मेरा

वर्णानुक्रमेण कामगायत्र्या वर्णसंख्या सार्द्धचतुर्व्विंशतिरिति यल्लिखितं तन्मतानुसारेण मयापि तल्लिख्यते। तद्यथा-काम-गायत्री मन्त्ररूप, हय कृष्णेर स्वरूप, सार्द्ध चव्विश अक्षर तार हय। से अक्षर चन्द्रचय, कृष्णे करि उदय, त्रिजगत कैल काम-मय ॥ इत्येतत् प्रमाणमवलम्ब्य पूर्व्वमतानुसारेणानुक्रम्य संख्या-प्यते किन्तु श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी पञ्चविंशति परित्यज्य केन प्रमाणेन केन वाभिप्रायेण सार्द्ध चतुर्व्विंशतिमक्षरसंख्या-गदति तत्रापि मम धीगोचराभावः। नानापाठ्यश्राव्यशास्त्र विचारे चार्द्धाक्षरसम्भावना नास्ति। अतो महासन्देहसागरे निमग्न आसमिति यूयं विचारयत। यदि केचिद् वदन्ति मात्राहीनतकारो अर्द्धाक्षरं तदा मात्राहीनान्यक्षराण्यत्र तदितरान्यपि सन्ति। इत्यपि न घटते। यतो व्याकरणपुराणागम-नाट्यालङ्कारादिशास्त्रे स्वरव्यञ्जनभेदेन पञ्चाशद्वर्णनिर्णय एवास्ति तत्रार्द्धाक्षरं नास्त्येव।

लिखने का वृत्तान्त इस प्रकार है सुनिये। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्यचरितामृत में प्राकृत वर्ण क्रम से काम-गायत्रि की वर्ण संख्या साढ़े चौबीस कही है। उनके मत के अनु-सार मैंने भी साढ़े चौबीस अक्षर का उल्लेख किया है। वे चैतन्य-चरितामृत में इस प्रकार कहते हैं—"कामगायत्री मन्त्र रूप है वह श्रीकृष्ण का स्वरूप है। उसके अक्षर साढ़े चौबीस होते हैं। वे अक्षर रूप चन्द्र समूह श्रीकृष्ण में उदय होकर त्रिजगत् काममय कर रहे हैं।" इस प्रमाण का अवलम्बन करके तथा पूर्व (प्राचीन) मत का अनुशरण कर मैंने भी इस प्रकार व्याख्या की। परन्तु मुझे बड़ा भारी यह सन्देह उठा है कि श्रीकृष्णदास कविराज ने पचीस अक्षर का परित्याग कर किस प्रमाण वल से अथवा किस अभिप्राय से साढ़े चौबीस अक्षर कहे हैं? इस विषय में मेरी बुद्धि प्रवेश नहीं रही। अनेक ग्रन्थ-पाठ श्रवण करने पर अर्द्धाक्षर

तद्यथा श्री हरिनामामृत व्याकरणे संज्ञापादे "नारायणादुद्भूतो-ऽयं वर्णक्रम" इति पञ्चाशदकारककारादयः। एवमन्येष्वपि व्याकरणेषु च। पुनः बृहन्नारदीयपुराणे श्रीराधिकासहस्रनाम-स्तोत्रे-बृन्दावनेश्वरी राधा पञ्चाशद्वर्णरूपिणीत्यपि। एवमेव शास्त्रा-न्तरेष्वपि मातृकादि प्रकरणे च कुत्रापि सार्द्ध पञ्चाशद्वर्णक्रमो मया न दृश्यते। एतेषु श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामिनः किं धीगो-चराभावः। एतदपि न संभाव्यते। यतः स सर्व्वं जानाति भ्रम-प्रमादादिदोषराहित्यात् ॥ १५

की सम्भावना सिद्ध नहीं होती है। अतः इस महान सन्देह सागर में मैं निमग्न रहा। आप सब इस विषय का विचार कीजिये। देखिये-यदि कोई-कोई मात्रा से रहित तकार को अर्द्धाक्षर कहते हैं तो भी यह समीचीन नहीं है। क्यों कि इस मन्त्र में मात्रा रहित अन्य अक्षर भी मौजूद हैं। वे क्यों अर्द्धाक्षर नहीं होंगे? व्याकरण-पुराण- आगम-नाट्य-अलङ्कारादि शास्त्रों में स्वर-व्यञ्जन भेद से पचास वर्णों का निर्णय है। उन में अर्द्धाक्षर का निर्णय नहीं है। श्रीहरिनामामृत व्याकरण में संज्ञा-प्रकरण में कहा गया है—"यह वर्णक्रम नारायण से उत्पन्न हुआ है। अकारादि स्वरवर्ण तथा ककारादि व्यञ्जनवर्ण सर्व्वसमेत पचास वर्ण होते हैं।" इस प्रकार अन्य व्याकरणों में भी कहा गया है। और भी देखिये-वृहन्नारदीय-पुराण में राधिका-सहस्रनामस्तोत्र में "श्रीराधा वृन्दाबनेश्वरी, पचास वर्ण स्वरूपा हैं" ऐसा भी कथन है। इस प्रकार अन्य शास्त्रों में भी कहा गया है। मातृकादिप्रकरण में कहीं भी साढ़े पचास वर्ण क्रम नहीं देखा जाता है। मैं ऐसी भी सम्भावना नहीं कर सकता हूँ कि श्री कविराज गोस्वामी का बुद्धि-प्रवेश नहीं है। क्योंकि वे सब ही जानते थे। उन में भ्रम-प्रमादादि दोष का अभाव था ॥ १५ ॥

पुनश्च यद्यपि तकारोऽर्द्धाक्षरं निश्चीयते तदा किं श्रीकृष्ण-दास कविराज गोस्वामिना क्रमभङ्गं विलिख्यते?यतो मुखगण्डादि-चरणान्तवर्णनक्रमेण चरणं परित्यज्य ललाटे अर्द्धचन्द्रः संस्थाप्यते। तद्यथा-श्री चैतन्यचरितामृते मध्यलीलायामेकविंशपरिच्छेदे श्री सनातन-शिक्षाप्रसङ्गे सम्बन्धतत्वविचारे-

"सखि हे कृष्णमुख द्विजराज राज।
कृष्ण वपु सिंहासने वसि राज्यशासने, करि संगे चन्द्रेर समाज॥ध्रु.
दुइ गण्ड सुचिक्कण जिनि मणि दर्पण,
सेइ दुइ पूर्ण चन्द्र जानि।
ललाट अष्टमी इन्दु ताहाते चन्दन विन्दु,
से हो एक पूर्ण चन्द्र मानि॥

फिर भी यदि तकार अर्द्धाक्षर ऐसा निश्चय किया जाता है तब उस विषय में क्या कविराज गोस्वामी जी ने क्रम भंग करके लिखा है? क्योंकि मुख-गण्डादि से लेकर चरणान्त वर्णन क्रम में मात्रा रहित तकार अर्द्धचन्द्र चरण में आता है परन्तु वे ललाट में अर्द्धचन्द्र की स्थापना करते हैं। श्री चैतन्य चरितामृत के मध्य-लीला इक्कीस परिच्छेद पर श्री सनातन-गोस्वामी जी की शिक्षा प्रसङ्ग में सम्बन्धतत्व का विचार में—

श्रीकृष्ण विरह विधुरा श्रीराधिका किसी सखी के निकट श्रीकृष्ण का रूप वर्णन कर रही हैं। इधर श्रीराधिका-भाव से विभावित श्रीगौराङ्गचन्द्र अपने को राधिका मान कर किसी सखी को लक्ष्य करके उसका अनुवाद कर रहे हैं—यह वर्णन श्रीपाद सनातन गोस्वामी जी की शिक्षा के लिये है, वे व्रजलीला में रति-मञ्जरी हैं।

"हे सखि! श्रीकृष्ण का मुख चन्द्र चन्द्रसमूह का राजा है। वह उनके देहरूप सिंहासन में बैठ कर राज्य-शासन कर रहा

कर नख चाँदेर हाट वंशी ऊपर करे नाट,
तार गीत मुरलीर तान।
पद नख चन्द्र गण तले करे नर्त्तन,
नूपुरेर ध्वनि जाँर गान॥
नाचे मकर कुंडल नेत्र लीला कमल,
विलासी राजा सतत नाचाय।
भ्रू धनु नासा बाण धनुर्गुण दुइ कान,
नारी गण लक्ष्य विंधे ताय॥
एइ चाँदेर बड नाट पसारि चाँदेर हाट,
विनु मूले विलाय निजामृत॥
काहाँ स्मित ज्योत्स्नामृते काहाके अधरामृते,
सब लोक करे आप्यायित"॥

है। संग में चन्द्रों का समाज विराजमान है अर्थात् अन्य साढ़े तेईस चन्द्र इस मुखचन्द राजा के परिकर हैं। मणिदर्पण पराजय कारी सुचिक्कण दोनों गण्ड दो पूर्णचन्द्र हैं। उनके ललाट में अष्टमी तिथि का चन्द्रमा अर्थात् अर्द्धचन्द्र मौजूद है। उसमें चन्दनविन्दु शोभायमान है। वह एक पूर्ण चन्द्र है। इस प्रकार साढ़े चारि चन्द्रमा हैं। हाथों के दस नख दस चन्द हैं वे सब वंशी के ऊपर नृत्य कर रहे हैं। तात्पर्य्य-बंशीवादन के समय श्रीकृष्ण हाथों की अँगुलियों को उठाते हैं नवाते हैं। वह मानो नृत्यस्वरूप में अँगुलियों की स्थिति है। उन अँगुलि चन्द्र समाज का नृत्य में मुरली तान गान रूप है। भावार्थ—हाथों के अंगुलि-नख रूप दश चन्द्र गान करते हुए वंशी के ऊपर विराजमान होकर नाच रहे हैं। पुनः पदनख रूप चन्द्रगण अर्थात् दशचन्द्र नीचे मानों रह कर नृत्य कर रहे हैं। नूपुर ध्वनि मानो उनका गान है। कानों में मकरकुण्डल भी चलायमान हैं मानो वे नृत्य कर रहे हैं। नेत्र

इत्यनुवादद्वयेन बहुवादानन्तरमपि अत्र सिद्धान्तो न घटते। तदा सर्व्वोपायं त्यक्त्वान्नपानादिकञ्च विहाय मनोदुःखेन देहत्यागाभिप्रायेण राधाकुण्डतटेऽभिपपातोऽहम। यदा मन्त्राक्षरगोचरो न भवेत्तदा कथं देवतागोचरो भविष्यतीति देहत्याग एव कर्त्तव्यः॥ १६॥

दोनों लीला कमल हैं। मुखरूप विलासी चन्द्रराजा निरन्तर उनको नचाता रहता है। अर्थात् श्रीकृष्ण के दोनों नेत्र निरन्तर घूर्णायमान हैं। श्रीकृष्ण के भ्रू धनुरूप है। उसमें वाण मानो नासिका है। दोनों कान धनु के गुण हैं। वह मुखचन्द्ररूप विलासी राजा इन धनुर्व्वाणों के द्वारा गोपनारियों को विद्ध मर्म्माहत करता है। गोपियों ने उसके श्रीकृष्णवपुः सिंहासन का एक अमूल्य रत्न अर्थात् श्रीकृष्ण का मन रूप रत्न की चोरी की, अतः उनको उन वाणों के द्वारा विंध कर शासित कर रहा है। भावार्थ-श्रीकृष्ण के मुखदर्शन से गोपियाँ निरन्तर मर्म्माहत रहती हैं। इस चन्द्रमा के अर्थात् मुखरूप विलासी चन्द्रराजा के और एक अद्भुत विलास है। वह ऐसा है कि उसने एक वड़ा भारी हाट को फैलाय रक्खा है। उस बाजार में अन्य चन्द्र सब दूकानदार हैं। वह राजा उन दूकानदारों के द्वारा विना मूल्य में समागत जनों को निजामृत का वितरण करता रहता है। किसी को स्मितरूप ज्योत्स्नामृत से किसी को मुखअधरामृत से इस प्रकार सब को प्रसन्न करता है।"

इस प्रकार दोनों अनुवाद से बहु विचार परामर्श के अनन्तर भी इस विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं घटता है। उस समय मैं समस्त उपाय छोड़ कर अन्नभोजन-जलपानादि त्याग कर मन के दुःख में देह त्याग का विचारकर राधाकुण्ड के तट में निश्चेष्ट पड़ा रहा। यदि मन्त्राक्षर गोचर नहीं होरहा है तब किसप्रकार देवता गोचर हो सकता है अतएव देहत्याग ही कर्त्तव्य है॥ १६॥

ततो रात्रे द्वितीयप्रहरे गते सति तन्द्रां प्राप्य मया दृश्यते स्म। श्री वृषभानुनन्दिनी आगता अवीति- भो विश्वनाथ! हरि-वल्लभ! त्वमुत्तिष्ठ। श्रीकृष्णदासकविराजेन यल्लिखितं तदेवसत्यम स च मम नर्म्मसहचरी, ममानुग्रहेण ममान्तरं सर्व्वं जानात्येव; तद्वाक्ये सन्देहं मा कुरु, एष ममोपासनामन्त्रः, अहमपि मन्त्राक्षरै-र्वेद्या। मदनुकम्पां विना नान्यः कोऽप्येतद्विज्ञातुमर्हति। अर्द्धा-क्षरनिरूपणं "वर्णागमभास्वदि" यदस्ति। यद् दृष्ट्वा श्री कृष्णदास कविराजेन लिखितं तत् शृणु। तदनन्तरं त्वमिमं ग्रन्थं दृष्ट्वा सर्व्वोपकारार्थमत्र प्रमाणसंग्रहं कुरु। एतच्छ्रुत्वन् चैतन्यावस्थायां शीघ्रमुत्थाय निःसन्देहेन हाहेतिमुहुर्मुहुर्विलप्य तदाज्ञां हृदि निधाय तत्पालनार्थं यत्नवानभवम्। अर्द्धाक्षरनिर्णये श्रीराधिका-वाक्यं यथा—"व्यन्तयकारोऽर्द्धाक्षरं ललाटे ऽर्द्धचन्द्रविम्बः तदितरं पूर्णाक्षरं पूर्णचन्द्र" इति॥ १७

इस प्रकार रात्रि का द्वितीय प्रहर अतीत हुआ। मैं कुछ तन्द्रा प्राप्त हो गया। मैंने देखा कि श्री वृषभानुनन्दिनी आकर कहने लगीं-हे विश्वनाथ! हे हरिवल्लभ! तुम उठो। कृष्णदास कविराज ने जो लिखा है वह सत्य है। कृष्णदास तो मेरी नर्म्म सहचरी है। मेरा अनुग्रह से वह मेरा समस्त अन्तरभाव जानता है। उनके वाक्य में सन्देह मत करो। यह मन्त्र मेरी उपासना स्वरूप है। मन्त्राक्षरों से मैं भी जानी जाती हूँ। मेरी अनुकम्पा के बिना और कोई इस विषय का रहस्य नहीं जान सकता है। "वर्णागमभास्वद्" नामक ग्रन्थ में अर्द्धाक्षर निरूपण है। जिसको देख कर ही कृष्णदास कविराज ने लिखा है। तुम सुनो। इसके अनन्तर तुम भी इस ग्रन्थ को देख कर सब के उपकारार्थ इस विषय का प्रमाण संग्रह करो। राधिका जी का इस प्रकार वचन सुन कर मेरी कुछ चैतन्य-अवस्था हुई। मैं चेतन होकर शीघ्र

श्रीराधिकोपदेशसम्मतमर्द्धाक्षरनिरूपणं यथा-वर्णागम-भास्वदि-विकारान्तयकारेण चार्द्धाक्षरं प्रकीर्त्तितम् ॥ १८

गायत्री—"गायन्तं त्रायते तस्मात् गायत्रीत्वं ततः स्मृतम्"

इति श्री मद् विश्वनाथचक्रवर्ती विरचित मन्त्रार्थदीपिकायां कामगायत्र्यर्थः सम्पूर्णः ॥

उठा। मेरा सन्देह जाता रहा। मैं "हाय हाय" इस प्रकार बार २ विलाप करने लगा। उनकी आज्ञा को हृदय में धारण कर उस के पालन के लिये यत्नवान हुआ। अर्द्धाक्षरनिर्णय में श्रीराधिका वचन इस प्रकार यथा-"वि" अन्त में जिसका ऐसा जो "य" कार वह अर्द्धाक्षर माना जाता है। वर्ण क्रम से वह अक्षर ललाट में पड़ता है। श्रीकृष्ण के ललाट में अर्द्ध चन्द्र की स्थिति सुसिद्ध है अर्थात् ललाट अर्द्धचन्द्र-विम्ब स्वरूप है। मन्त्र के अन्य सब अक्षर-पूर्णाक्षर हैं तथा पूर्णचन्द्र स्वरूप हैं ॥ १७ ॥

श्रीराधिका के उपदेश सम्मत अर्द्धाक्षर निरूपण "वर्णागम-भास्वद्" में इस प्रकार है-विकारान्त यकार अर्द्धाक्षर कहा जाता है, अर्थात् अन्त में "वि" रहने पर "य" अर्द्धाक्षर माना जाता है ॥ १८ ॥

यहाँ गायत्री शब्द का अर्थ—ग...
है इसलिये गायत्री कही जाती है ॥१९॥

अनुवादक
कृष्णदास

कामगायत्री व्याख्या

आदौ बीजार्थः—

पञ्चालङ्कारसंयुक्तं बीजं तु परमाद्भुतम् ।
लकारात्पृथिवी जाता ककाराज्जलसंभवः ॥
ईकाराद्वन्हिरुत्पन्नो नादाद्वायुः प्रजायते ।
विन्दोराकाशसंभूतिरिति भूतात्मको मनुः ॥ १ ॥

यद्वा—ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
ईकारः प्रकृती राधा नित्या बृन्दावनेश्वरी ॥
लश्चानन्दात्मकं प्रेमसुखत्वे परिकीर्तितम् ।
चुम्वनानन्दमाधुर्य्यं नादो विन्दुस्समीरितम् ॥
ककारो नायकः श्रेष्ठः ईकारो नायिका वरा ।
लकारो ल्हादरूपा च विन्दुश्चुम्बनमुच्यते ॥ २ ॥

केचिदेवं व्याख्यायन्ते—गल-शिर आस्यं ककारः, चक्षुःकर्ण-वाहु लकारः, रूपनासिकाहस्तं ईकारः, कक्ष-पृष्ठ-कटि-जंघा नादः,

---

पहले बीज का अर्थ कहते हैं—गौतमीयतन्त्र में इस प्रकार है—"लकार पृथिवी का बीज है अर्थात् लकार से पृथिवी की उत्पत्ति है । इस प्रकार ककार से जल, ईकार से अग्नि, नाद से वायु, विन्दु से आकाश का उत्पन्न है । यह मंत्र पंच भूतात्मक है ॥१

सच्चिदानन्दविग्रह-अप्राकृत अर्थात्दिव्यरूप, महापुरुष श्रीकृष्ण स्वरूप ककार, मूल प्रकृती नित्या वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका स्वरूप ईकार है । आनन्दात्मक स्वरूप लकार प्रेम सुख में कहा जाता है । चुम्वनानन्द माधुर्य्य में नाद-विन्दु का व्यवहार है ।

ककार से नायक शिरोमणि, ईकार से श्रेष्ठा नायिका, लकार से आनन्दरूपा, विन्दु से चुम्बन कहे जाते हैं ॥२॥

कोई कोई इस प्रकार की व्याख्या करते हैं—गला-मस्तक-मुख-स्वरूप ककार, नेत्र-कर्ण-वाहु रूप लकार, रूप—नासिका-हस्त

जानुपादौ च विन्दुः इति पञ्चभूतो मूर्तिमान पुरुषः ॥ ३ ॥

कादापो लात् पृथिवी ईतो वन्हिर्नादाद्वायुः विन्दोराकाशसंभूत- इति जलरसपुरुषकामः ककारः । पृथिवीगन्धप्रकृतिमूर्ति लंकारः । तेजरूपमहदाधार ईकारः । वायुस्पर्शजीवो नादः । आकाश-शब्दोऽहंकारो विन्दुः इति गोपालतापनी वेदे ॥ ४ ॥

रत्नप्रिया रतिकला भद्रा सौरभा ककारः । सुमुखी कलहंसी लकारः । मदोन्मदा चन्द्राकारः लकारः । कलापिनी विन्दुः ॥ ५ ॥

ककारः कथ्यते कामो लकारो मूर्त्तिरुच्यते ।
ईकारः शक्तिरूपा च नादो विन्दुरुदीरिता ॥ इति मुनयः ॥६॥

ईकारो नायिका मुख्या लकारो ललिता परा ।
ककारो नायको मुख्यो विन्दुश्च भुवनमुच्यते ॥
आश्लेषोऽप्यर्द्धचन्द्रश्च बीजार्थः परमाद्भुतम् ॥ इति ॥७॥

ईकार, काँख-पीठ-कटि-जंघा नाद, जानु-चरण विन्दु हैं । इस प्रकार पञ्चभूत स्वरूप मूर्तिमान् एक पुरुष सिद्ध हुआ है ॥३॥

ककार से जल, लकार से पृथिवी, ईकार से अग्नि, नाद से वायु, विंदु से आकाश की उत्पत्ति है इस लिये ककार जलरस-पुरुषमय कामस्वरूप है । पृथिवी गंध-प्रकृति मूर्ति रूप लकार है । तेज-रूप-महदाधार स्वरूप ईकार है । वायु-स्पर्श-जीव रूप नाद तथा आकाश-शब्द-अहङ्कारात्मक विन्दु है ऐसा गोपालतापनी वेद में वर्णन है ॥ ४ ॥

ककार रत्नप्रिया रतिकला भद्रासौरभा स्वरूप है । इस प्रकार लकार में सुमुखी-कलहंसी, चन्द्रविन्दु में मदोन्मदा, विन्दु में कलापिनी को जानना चाहिये ॥ ५ ॥

ककार से काम, लकार में मूर्ति, ईकार से शक्ति, विन्दु से नाद कहे जाते हैं ऐसा मुनियों का वचन है ॥ ६ ॥

ईकार से मुख्या नायिका श्रीराधिका, लकार से परा रूपा

कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ॥ अस्यार्थः—कामेन अभिलाषेन स्वविषयप्रीतिदार्ढ्येन दीव्यति क्रीडति दिवु क्रीडायां नित्यविषयत्वात् तस्मै कामदेवाय। विद्महे विद्लृलाभे विदु ज्ञाने वा धीमहि ध्यायेमः कामदेवाय कथंभूताय पुष्पबाणाय पुष्पमेव बाणो यस्य तस्मै, तन्नोऽनङ्गः सोऽनङ्गः कन्दर्पः, नोऽस्मान् प्रचोदयात् (प्रकर्षेण) प्रकृष्टरूपेण उदयात् उदयं (कुर्य्यात्) इत्यर्थः। चकारः समुच्चयार्थे इति। "क्लीं" इति पदेन मूर्तिमान् पुरुषः, कामपदेन गण्डद्वयम्, देवपदेनात्रास्यभाल उच्यते, अभिलाषेण स्वविषयप्रीतिदार्ढ्येन चन्द्रमण्डलेन दीव्यति क्रीडति, यकारेण अर्द्धचन्द्रः भाले तिलकचन्द्रः सार्द्धचन्द्रचतुष्टयः इत्यपि

श्री ललिता, ककार से नायक मुख्य श्री कृष्ण हैं। विन्दु चुम्बन स्वरूप है। आश्लेष अर्द्धचन्द्र स्वरूप है। ऐसा परम अद्भुत कामबीज का अर्थ है ॥ ७ ॥

अब काम गायत्रि का अर्थ कहते हैं। काम से अर्थात् अभिलाष से किम्वा निज विषय प्रीतिदार्ढ्य के द्वारा "दीव्यति" अर्थात् क्रीड़ा करता है वह कामदेव है उस कामदेव के लिये। "दिवु" यह धातु क्रीडार्थ में है। वह क्रीडा नित्य विषयक है। विद्महे इस का अर्थ-"विद्लृ" लाभार्थ किम्वा ज्ञानार्थ में प्रयोजित होता है। अर्थात् हम कामदेव के लिये जानते हैं, किम्वा उस को प्राप्त करते हैं। "धीमहि" शब्द का अर्थ हम ध्यान करते हैं। कामदेव किस प्रकार है ? कहते हैं-"पुष्पबाणाय" यहाँ पुष्प है बाण जिसका वह पुष्पबाण है। कामदेव का पुष्पबाणत्व जगप्रसिद्ध है। तात्पर्य्य-पुष्पबाणधारी उस कामदेव को जानने के लिये किम्वा लाभ करने के लिये हम सब ध्यान करते हैं। "तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्" अर्थात् वह अनङ्ग कामदेव हम सब के लिये उदय होवें। यहाँ समुच्चयार्थ में चकार है ॥

शिशिराधिरं क्रमात् क्रमरूपेण विंशत्यक्षरेण विंशतिश्चन्द्रा उच्यन्ते। कामो गरुड्द्वये स्नेहे विलासे स्पर्शतृष्णयोः इति भास्वदि। ककारः कौशले चन्द्रे विलासे स्त्रगसालयोः इति व्योपानः। मकारो मधुरे हास्ये विकाशे छवितृष्णयोः इति ऋषभः।'दे' इति दा दाने औणादिकत्वा-देकारः। दामास्माज्योत्स्नायामिति एकारप्रत्ययः। देश्चन्द्रे विलासे अन्नेऽहने मण्डलेऽपिच इति देवयोनिः। देश्चन्द्रमण्डले हास्ये हविदानविलासयोः इति व्याघ्रभूतिः। व इति वनभूतो वनधातोः औणादिकत्वात् पञ्चम्यन्ताद्वाचेऽइति उप्रत्ययः। वकारो लौल्यलाव-ण्ये इन्द्रायुधशशोधरे इति भास्वनिः। वकारान्तयकारेण अर्द्धचन्द्रः

क्लीं इस पद से मूर्तिमान अप्राकृत, परम पुरुष का बोध होता है। काम पद से दोनों गरुड, देव पद से उन के मुख, भाल सूचित होते हैं। वे अभिलाष से अर्थात् निज विषय प्रीति दाढ्र्य के द्वारा चन्द्रमण्डल रूप से क्रीडा करते हैं। यहाँ यकार से अर्द्धचन्द्र की प्राप्ति है। वह भाल देश में तिलक रूप से विराजमान है। इस प्रकार साढ़े चारचन्द्र हुए पुनः कामगायत्री के क्रम से बीस अक्षर से बीस चन्द्र कहे जाते हैं। मन्त्र के सर्व्वसमेत चौबीस अक्षर हैं। जो चन्द्र रूप से परम पुरुष श्री कृष्ण के विग्रह में साढ़े चौबीस संख्या में विराजमान हैं। तात्पर्य्य—साढ़े चौबीस अक्षर से साढ़े चौबीसचन्द्र हैं। वे सब श्रीकृष्ण विग्रह में एक ही समय उदय होकर त्रिजगत को काममय अर्थात् आनन्द रसमय कररहे हैं।

अब एक एक अक्षर के चन्द्रस्वरूप का वर्णन करते हैं—गरुड दोनों में, स्नेह-विलास-स्पर्श-तृष्णा विषय में काम शब्द का प्रयोग होता है यह "भास्वद्" कार का मत है। ककार शब्द का प्रयोग कौशल-चन्द्र-विलास-माला-रसाल में है ऐसा व्योपान कहते हैं। मकार का प्रयोग मधुर-हास्य विकाश-छवि-तृष्णा में है ऐसा ऋषभ का वचन है। "दे" यह "दा" धातु दानार्थ में है। औणादिक के

...नितः, लक्षणानुरोधात्। य चन्द्रार्द्धं वैभवश्च विलासं दारुणं भयं इति व्याड़िः। विशब्दादि पञ्चाक्षरेण दक्षिणावर्त्तक्रमेण पञ्च चन्द्रा उच्यन्ते। तद्यथा विद्महे पुष्प इत्यादि। बाणादिपञ्चाक्षरेण वामवर्त्तादिक्रमेण पञ्च चन्द्रा उच्यन्ते तद्‌यथा बाणाय धीमहि इत्यादि। तत्र कौस्तुभस्य मणेरधस्तात् वामदक्षिणरूपेण दशाक्षरेण दश चन्द्रा उच्यन्ते। तत्र दक्षिणादिक्रमेण हिशब्दादिपञ्चाक्षरेण पञ्च चन्द्रा उच्यन्ते तद्‌यथा हि तन्नोऽनङ्गः इति। प्रशब्दादिपञ्चाक्ष-

कारण आ स्थान में एकार है। "दामास्मा ज्योत्स्नायाम्" यह एकार प्रत्यय है। दे शब्द चन्द्र-विलास-अन्न-सूर्य्यमण्डल में प्रयोजित होता है ऐसा देवज्योति कहते हैं। दे शब्द चन्द्रमण्डल-हास्य-हाव-दान-विलासार्थ में है ऐसा व्यादिप्रभूति जी भी कहते हैं। "व" यह वनभूत वन धातु में औणादिक के कारण पञ्चम्यन्त में भाव में उ प्रत्यय विशिष्ट है। लोलता-लास्य-लावण्य-इन्द्र के आयुध-चन्द्रमा में वकार का प्रयोग है एसा भास्वद् कार का मत है। बकार अन्त में रहने के कारण "य" कार अर्द्धमात्रात्मक अर्द्धचन्द्र स्वरूप है। लक्षणा के अनुरोध से यह सिद्ध है। यकार अर्द्धचन्द्र-वैभव विलास-दारुण-भयार्थ में है ऐसा व्याडिपण्डित का मत है। वि शब्द को आदि करके दक्षिणावर्त्त क्रम से पाँच चन्द्र कहे जाते हैं। वे यथा "विद्महे पुष्प" ऐसा है। बाण आदि करके वामावर्त्त क्रम से पांच चन्द्र होते हैं। वे यथा—"बाणाय धीमहि" एसा है। इस का निष्कर्षार्थ यह है—श्रीकृष्ण विग्रह में कौस्तुभमणि के नीचे दक्षिण भाग वामभाग रूप से दशाक्षर स्वरूप दस चन्द्र कहे जाते हैं। पहले दक्षिणादि भाग क्रम से हि शब्द आदि करके पांच अक्षर पांच चन्द्र हैं। वे यथा "हि-तन्नोऽनङ्गः" ऐसा है। प्रशब्द आदि करके पञ्चाक्षर पञ्च चन्द्रमा हैं वे यथा—"प्र-चो-द-या-त्" ऐसा है॥

रेण पञ्च चन्द्रा उच्यन्ते तद्यथा-प्रचोदयात् इति। विशब्दो विविधे प्राज्ञे हिङ्गुले च शशोधरे इति विश्वः। डुधाञ् धारणपोषणयो र्धाधातोः औणादिको मः प्रत्ययः निपातश्चेति ध्मः। ध्मकारो विविधे नृत्ये तेजोराशौ शशोधरे इति भास्वदिः। हेशब्दो हेतुके विज्ञे इन्दौ पुन रसालयोः इति कामतन्त्रः। पुशब्दो रसनाज्योत्स्नानृत्यचन्द्रा-कुंशेऽम्बुजे इति देवद्योतिः। च्पकारो विकले प्राज्ञे विधौ मौक्तिकदा-मनि इति रत्नहासः। वाशब्दो विषमाधारे चन्द्रज्योत्स्नापवृद्धयोः इति वामनपुराणे। णकारो विषमाविष्टे नृत्यचन्द्ररसायने इति स्वभूतिः। यकारश्चन्द्रविम्वे च विशालाक्षे रसाकरे इति व्याघ्र-भूतिः। धी शब्दो बुद्धौ प्राज्ञे च विधौ चन्द्राभिवादयोः इति चन्द्-

---

विशब्द विविध–प्राज्ञ-हिङ्गुल-शशधर में है ऐसा विश्वकोश का कथन है। "डु धा ञ धारणपोषणयोः" अर्थात् धारणार्थ में धा धातु का प्रयोग होता है। औणादिक म प्रत्यय में निपातन सिद्ध हो कर धा स्थान में "ध्म" हुआ है। "ध्म"कार विविधार्थ-नृत्य-तेजोराशि-शशधर में है ऐसा भास्वद्कार कहते हैं। "हे" शब्द हेतु-विज्ञ-चन्द्र-रस-आलयार्थ में है यह कामतन्त्र का कथन है।"पु"शब्द रसना-ज्योत्स्ना-नृत्य-चन्द्र-अङ्कुश-अम्बुजार्थ में है ऐसा देवद्योति कहते हैं। "च्प" कार विकल-प्राज्ञ-चन्द्र-मुक्तामाला में है ऐसा रत्नहास का मत है। "वा" शब्द विषम-आधार-चन्द्र-ज्योत्स्ना-अपवृद्धि अर्थ में है ऐसा वामन पुराण में कहा गया है।

"ण" कार विषम-आविष्ट-नृत्य-चन्द्र-रसायनार्थ में है यह स्व-भूति कार का वचन है। "य" कार चन्द्रविम्ब-विशालाक्ष रसाक-रार्थ में ऐसा व्याघ्रभूति कहते हैं। "धी" शब्द वुद्धि-प्राज्ञ-चन्द्र-चन्द्राभिवादार्थ में ऐसा चन्द्रमौलि कहते हैं। "म" कार मारुत-बुद्धि–प्रभाकर–निशाकरार्थ में ऐसा स्वभूति का कथन है। "हि" शब्द रसावेश–हिङ्गुल–चन्द्रमण्डल में ऐसा रभसकार कहते हैं।

मौलिः। मकारो मारुते वृद्धौ प्रभाकर निशाकरे इति स्वभूतिः। हि शब्दो हि रसावेशे हिङ्गुले चन्द्रमण्डले इति रभसः। तत्सादृश्ये विभावे च तकारश्चन्द्रमण्डले इति व्याघ्रभूतिः। नशब्दो नौस्त्रियानौ वा नकारश्चन्द्रमण्डले इति देवद्योतिः।

अनङ्गो मदने विश्वेऽनङ्गश्चंद्रे विभावने इति चंद्रमौलिः। प्रशब्दो विविधे नृत्ये प्रहृष्टे चन्द्रमण्डले इति व्याघ्रभूतिः। चकारश्चलने चन्द्रे चञ्चले च विभावने इति स्वभूतिः।दकारो विविधे नृत्ये चंद्रविम्बे ऽधरेऽपिच इति भास्वदिः। य आसने विधाने च यकार श्चन्द्रमण्डले इति चंद्रमौलिः। स्तवस्तोत्रविकाशेषु तकारश्चन्द्रमण्डले इति देवद्योतिः॥ इति॥ ८॥

(अथ श्रीप्रबोधानन्दैरुक्तं)यत्तत्कामो मंत्री भवेत् मंत्री तदा कामः। आब्रह्म भुवनं व्याप्तं करोति। कामस्य बाणाः पञ्च। उन्मादनस्ता-

---

"त" सादृश्यार्थ-विभावार्थ में तथा "त" कार चन्द्रमण्डल में है ऐसा व्याघ्रभूति कहते हैं। "न"कार नौका-स्त्रियान में है, चन्द्रमण्डल में भी न कार का प्रयोग होता है ऐसा देवद्योति कहते हैं। अनङ्ग शब्द मदन-विश्व-चन्द्र-विभावनार्थ में है एसा चन्दमौलि कहते हैं। 'प्र" शब्द विविध-नृत्य-प्रहर्ष-चन्द्रमण्डलार्थ में यह व्याघ्रभूति का कथन है। "च" कार चलनार्थ-चन्द्र-चञ्चल-विभावनार्थ में है एसा स्वभूति का वचन है। "द" कार विविध-नृत्य-चन्दविम्ब--अधरार्थ में ऐसा भास्वद्कार कहते हैं। "य" कार आसन-विधि तथा चन्द्रमण्डल में है ऐसा चन्द्रमौलि का कथन है। "त्" कार स्तव-स्तोत्र-विकाश तथा चन्द्रमार्थ में है एसा देवद्योति कहते हैं। इस प्रकार कामगायत्री मन्त्र के साढ़े चौबीस अक्षर प्रत्येक चन्द्रस्वरूप हैं। वे साढ़े चौबीस चन्द्र श्रीकृष्ण विग्रह में विराजमान होकर त्रिजगत को काममय अर्थात् रसमय करते हैं॥ ८॥

पनश्च शोषणस्तम्भनस्तथा। सम्मोहनश्च कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ॥ अन्यत्र च-उच्चाटनश्चदाहश्चस्तम्भ आकर्षणस्तथा। सम्मोहनश्च कामस्य पंचबाणाः प्रकीर्तिताः ॥ अथ बाणानां व्याप्तिः-आम्रस्य मुकुलश्चैवाप्यशोकं बकुलं तथा। मल्लिका माधवी पञ्च बाणाश्च प्राप्यंते सदा। तापन-दाहन-उच्चाटन-सम्मोहनाकर्षणाः। आम्रमुकुलः ककारः। अशोकमुकुलो लकारः। माधवी ईकारः। मल्लिका अर्द्धचंद्रः। बकुलो विंदुः। स एवं मधुराः पञ्च मधुमूर्तिः। तत्र गण्डशिरास्यञ्च ककारः। चक्षुः कर्णं लकारः। रूपनासिकाहस्तं ईकारः। वक्षः-पृष्ठ-कटि-जङ्घा-नाद अर्द्धचंद्रः। जानुपादौ च विंदुः। "शृङ्गारः सखि? मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडतिः इति। मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं

अब व्याख्याकार स्वयं कहते हैं—

मन्त्रणा के कारण काम मन्त्री स्वरूप है। वह ब्रह्मा पर्य्यन्त समस्त जगत् का व्याप्त करता है। काम के बाण पञ्च संख्या में हैं। उन्मादन-तापन-शोधन-स्तम्भन-सम्मोहन ये पाच बाण हैं।

अन्यत्र भी कहा है-उच्चाटन, दाहन, स्तम्भन, आकर्षण सम्मोहन ये काम के पंच बाण कहे जाते हैं।

अब बाणोंकी व्याप्ति आम्रमुकुल-अशोक-वकुल-मल्लिका माधवीपुष्प में हैं। तापन-दाहन- उच्चाटन-सम्मोहन-आकर्षण ये धर्म्म हैं।

आम्रमुकुल ककार, अशोकमुकुल लकार, माधवी ईकार, मल्लिका अर्द्धचन्द्र, वकुल विन्दु स्वरूप हैं। पाँच पाँच अङ्ग-प्रत्यङ्ग में वे पाँचो विराजमान होकर एक मधुर स्वरूप बनते हैं। दोनों गण्ड-मस्तक-मुख स्वरूप ककार, दोनों नेत्र दोनों कर्ण ये लकार, रूप-नासिका-दोनों हाथ ये ईकार, वक्ष-पृष्ठ-कटि-दोनों जंघा ये अर्द्धचन्द्र नाद स्वरूप, दोनों जानु दोनों चरण विन्दु स्वरूप हैं। श्रीजयदेवचरण ने "गीतगोविन्द" में कहा है-हे सखि!

वदनं मधुरम् । मधु गन्धि मृदुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं इति । क्लीं वृदाबनस्याप्राकृतमदनः । पञ्चवाणस्य नाम तद्यथा–चित्तविद्यासदा-कामरमणञ्च प्रकाशकः॥चित्तानन्दधरः विद्यानन्दधरः, सदानन्दधरः, कामानन्दधरः, रमणानन्दधरः । पञ्च नाम्ना एक नाम ।

चित्त–विद्या–सदा-काम-रमणानन्दधराय विद्महे । चित्त विद्या-सदा काम रमणानन्दधराय स्वाहा इति कृष्णपक्षः स एव पञ्च मधुराः पञ्च मधुरमूर्तिर्वा । आम्रमुकुलश्चित्तकंदर्पः ।अशोकः कामानं प्रकाशकः । वकुलो विद्यानन्दधरः इति नामत्रिभिरेकं नाम । चित्तकंदर्प-कामानन्दविद्यानन्दधराय स्वाहा इति कृष्णस्य । माधवी कोटिचन्द्र मोहिनी । मल्लिका कोटिप्रेममोहिनी । नाम द्वाभ्यामेकनाम । कोटिचन्द्र–कोटिप्रेममोहिन्यै स्वाहा । तद्यथा–चित्त कंदर्प रमण कामानंद प्रकाशकः । विद्यानन्दधरा नाम कोटि प्रेम विमोहिनी ।

बसन्त ऋतु में मुग्ध होकर श्रीहरि क्रीड़ा करते हैं । मानों शृङ्गार मूर्तिमान् होकर क्रीड़ा कर रहा है । अन्यत्र भी कहा है–इन विभु के समस्त शरीर मधुर है मधुर है । इनके वदन मधुर है मधुर है, मधुर है । मृदुस्मित भी मधु से मधुर है । अहो समस्त मधुर है ।" "क्लीं"शब्द श्रीबृन्दावन के अप्राकृत मदन स्वरूप श्रीनन्दनन्दन है ।

पञ्चवाण का नाम इस प्रकार है—चित्तानन्दधर, विद्यानन्दधर, सदानन्दधर, कामानन्दधर, रमणानन्दधर है । पांच नाम से एक नाम इस प्रकार है । "चित्त विद्या सदा काम रमणानन्दधराय विद्महे" तथा "चित्त विद्या सदा काम रमणानन्दधराय स्वाहा" यह श्रीकृष्णपक्षीय व्याख्या है ।

आम्रमुकुल चित्त कन्दर्प, अशोक कामानन्दप्रकाशक, वकुल विद्यानन्दधारी हैं । इन तीन नाम के एक नाम इस प्रकार है । "चित्तकन्दर्पकामानन्दविद्यानन्दधराय स्वाहा" । यह नाम श्रीकृष्ण का है ।

कोटिचन्द्र मोहिनी च प्रत्येकं पञ्च भेदकः इत्युक्तं ।गोपाल-तापनी ह्यं तरुक्तं तं च प्रचक्षते। स एव स्थान-स्थानी सम्बंधः। प्रीतिस्थानं वृन्दावनं। कमलं श्रीराधिका। अभिज्ञावीते वसति सदा प्रेमसौरभं भ्रमरः श्रीकृष्णश्चञ्चलो भूत्वा मधुपाने विभोरः सदा। ककारः कृष्ण उच्यते। ईकारो श्रीराधिकेत्यादि। कामस्य पञ्च वाणाः। आम्रस्य मुकुलञ्चैवा प्यशोकं मुकुलं तथा इत्यादि ॥ ९ ॥

रसस्पर्शौ च रूपं च शब्दगन्धौ प्रभेदतः। भेदादि गुणरूपाद्याः पञ्चधा परिकीर्तिताः ॥ शान्तं दास्यं च सख्यञ्च वात्सल्यं मधुरे स्थितिः। शान्ति प्रीतिश्च सख्यन्तु वात्सल्यं प्रियताऽपि च। निष्ठा सेवा च निःशङ्कं स्नेहश्चैव मधुरता ॥ १० ॥

माधवी कोटिचन्द्र की भाँति मोहिनी तथा मल्लिका कोटिप्रेम मोहिनी हैं। दोनों नाम एक होने पर' 'कोटिचन्द्रकोटिप्रेममोहिन्यै स्वाहा'' एसा सिद्ध होता है। चित्त कन्दर्प-रमण-कामानन्द प्रकाश-कारी अथात् चित्तानंद-कन्दर्पानन्द-रमणानन्द-कामानन्द के प्रकाशक है। विद्यानन्दधारी का नाम कोटिप्रेमविमोहिनी तथा कोटि-चन्द्रविमोहिनी हैं। दोनों का यह पाँच प्रकार भेद है । गोपाल-तापनी में जो कहा गया उसे कहते हैं। वह ही स्थान-स्थानी सम्वन्ध विशिष्ट है। प्रीति का स्थान वृन्दावन है। कमल रूपा श्रीराधिका जी हैं। बुद्धि से परे जिसका स्थान है इस प्रकार प्रेम सौरभ उस प्रेम सौरभ से श्रीकृष्ण भ्रमर लुब्ध होकर निरन्तर मधुपान करते हुए विभोर रहते हैं। ककार से श्रीकृष्ण तथा ईकार से श्रीराधिका कहे जाते हैं। काम के आम्रमुकुल, अशोकमुकुलादि भेद से पंच वाण कहे गये हैं ॥ ९ ॥

रस-स्पर्श-रूप-शब्द—गन्ध भेद से गुण रूपादि पाँच प्रकार हैं । शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुर ये पाँच रस हैं। शान्तरस में शान्ति, दास्यरस में प्रीति, सख्यरस में सख्यता,

गुणाः स्युः पञ्चवाणस्य पराः पञ्च रसा ह्यपि ।
रूपाश्च वर्णरूपाद्याः पञ्चवर्णा उदीर्य्यते ॥ ११ ॥
तन्त्रे–पद्मजं तन्मुखापेतं शक्रस्योपरि संस्थितम् ।
सिन्दूर्विन्दुशिखापेतं प्रथमं सर्व्वकामदम् ॥ १२ ॥
इति श्री कामगायत्री व्याख्या च कथिता मया ॥ १६ ॥
इति श्रीप्रवोधानन्दसरस्वती विरचितं
कामगायत्रीव्याख्यापटलं समाप्तम् ।

वात्सल्य में वत्सलता, मधुर अर्थात् शृङ्गार रस में प्रियता, स्थायि-भाव अर्थात् आधार रूप मूल भाव हैं । शान्त में निष्ठा, दास्य में सेवा, सख्य में निःशंकत्व, वात्सल्य में स्नेह, मधुर में मधुरता प्रधान गुण हैं ॥ १० ॥

अन्य पंच रस भी पञ्चवाण के गुण स्वरूप हैं ऐसा भी जानना चाहिये । इस प्रकार पंचवर्ण भी पञ्चवाणके पंच वर्ण माने जाते हैं । तन्त्र शास्त्र मे एसा कहा गया है ॥ ११ । १२ ॥

इस प्रकार मैंने काम-गायत्री की व्याख्या कही है ॥ १६ ॥

अनुवादक
कृष्णदास

अग्निपुराणान्तर्गता गायत्रीव्याख्या

गायत्युक्थानि शास्त्राणि भर्गं प्राणां स्तथैव च।
ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्री यत एव च।
प्रकाशिनी सा सवितु र्वागरूपत्वात् सरस्वती ॥ १ ॥
तज्ज्योतिः परं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतम्।
भर्गः स्याद् भ्राजत इति बहुलं छन्दसीरितम् ॥ २ ॥
वरेण्यं सर्व्वतेजोभ्भः श्रेष्ठं वै परमं पदम् ॥ ३ ॥

श्रीजीवगोस्वामिकृता विवृतिः।

श्रीराधारमणो जयति।

सनातनसमो यस्य ज्यायान् श्रीमान् सनातनः।
श्रीवल्लभोऽनुजः सोऽसौ श्रीरूपो जीवसद्गतिः ॥

अथाग्नेयस्था गायत्रीव्याख्या विव्रियते। उक्थानि प्रणवात्मकमन्त्रान। शास्त्राणि सर्व्वानपि बेदान्। भर्गं वक्ष्यमाणं विष्णुरूपं तेजः। प्राणान् सर्व्वजीवहेतून् तद्विभूतींश्च। यतो यस्मात् गायति प्रकाशयति, ततो गायत्री स्मृता। यस्मादेव च त्रयीमयस्य सवितुः प्रकाशिनी प्रादुर्भावयित्री तस्मात् सृजेत् सवितारमिति सावित्री च। वागरूपत्वात् सरस्वती च सा ॥ १ ॥

अथो गेयेषु मुख्यत्वाद् भर्गमेव विवृणोति-तज्ज्योतिरिति। योऽयं भर्गः स एव तत् प्रसिद्धं परंब्रह्मः यतो भर्ग एव तेजः स्मृतः स्वप्रकाशकज्योतीरूपतया निर्द्दिष्टः। कया निरुक्त्या तस्य भर्गस्य तेजस्त्वं तत्राह-भर्गः स्याद् भ्राजत इति। कथं सिध्यति? तत्राह-बहुलं छन्दसीति। भगवता पाणिनिना ईरितं सूत्रितमित्यर्थ ॥ २ ॥

अथ तस्य मंत्रोक्तं वरेण्यत्वं साधयति-वरेण्यमित्यर्द्धेन। स च भर्गो वरेण्यं यत् परमं पदं सर्व्वस्याथाश्रयरूपं वस्तु, वरेण्यं नाम किं वस्तु तत्राह-सर्व्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं यत्तदेवेत्यर्थः। सर्वेषां तेजसां प्रकाशानां प्रकाशकत्वेन स्वप्रकाशकरूपमिति भावः ॥ ३ ॥

स्वर्गापवर्गकामै र्वा वरणीयं सदैव हि ॥ ४ ।
वृणोतेर्वरणार्थत्वाज् जाग्रत्स्वप्नविवर्जितम् ॥ ५ । ६ ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमेकं नित्यं भर्गमधीश्वरम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योति र्ध्यायेमहि विमुक्तये ॥ ७ ॥

एवं भर्गस्य वरेण्यपदेन रूढ्या श्रेष्ठत्वं दर्शयित्वा योगवृत्त्या सर्व्वप्रार्थनीयत्वं दर्शयति स्वर्ग इत्यर्द्धेन–स्पष्टम् ॥ ४ ॥

तत्र तदर्थ-सम्पादक-धात्वर्थमपि हेतुत्वेन निर्द्दिशति वृणोतेर्वरणार्थत्वादिति स्पष्टम् ॥ ५ ॥

अथ परमत्वज्ञापनाय पुनः वरमेव विशिनष्टि जाग्रत्स्वप्नविवर्जितमिति । तुरीयावस्थादपि जीवात् परमित्यर्थः ॥ ६ ॥

तदेव भर्गवरेण्ययोः पदयोरर्थं दर्शयित्वा प्रयोजनमाह-नित्यमिति । अहं भर्गं ध्यायेमहि, तत्र भर्गस्य विशेषणानि नित्यशुद्धमित्यादीनि, अहमित्यस्य विशेषणं ब्रह्मेति । तत्र नित्यं सदैव शुद्धं न तु जीववत् संसारित्वावस्थमित्यर्थः । एवं बुद्धं सदैव बोधयुक्तमित्यर्थः । एकं नतु जीववदनेकं । अधीश्वरं सर्व्वशक्तियुक्तं । अहं ब्रह्म परंज्योतिरिति "ना देवो देवमर्च्चयेदिति" न्यायेन स्वस्य तादात्म्यभावना दर्शिता । ध्यायेमहि न केवलः अहमेव ध्यायेय किन्तु सर्व्वेऽपि वयं जीवा ध्यायेमेत्यर्थः । किमर्थं ध्यायसि ? तत्राह–विमुक्तये । संसारमुक्ति पूर्व्वक–तत्प्राप्तये । तदेतन्मते भर्गशब्दस्य अदन्तत्वे पुंस्त्वे च सिद्धे मन्त्रोऽप्येवमेव व्याख्येयम् । सुपां सुलुगित्यादिना छान्दस–सूत्रेण द्वितीयया एकबचनस्यामः सुत्वादेशात् एवं तत्र "य" इत्येव वक्ष्यते, न तु य इत्यनेन सवितुराकर्षः क्रियते, "ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्तीति" विधानात् । "अतस्तद् भर्गोपदेशादिति" न्यायाच्च ॥ ७ ॥

विष्णुर्जगजन्मादिकारणम् ॥ ८ ॥
तज्ज्योतिर्भगवान् विष्णुर्जगजन्मादिकारणम् ॥ ८ ॥
शिवं केचित् पठन्ति स्म शक्तिरूपं वदन्ति च।
केचित् सूर्य्यं केचिदग्निं दैवतान्यग्निहोत्रिणः।
अग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते ॥ ९ ॥
तत्पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितुः स्मृतम् ॥ १० ॥
दधातेर्वा धीमहीति मनसा धारयेमहि ॥ ११ ॥
नोऽस्माकं यच्च भर्गस्तत् सर्व्वेषां प्राणिनां धियः।
चोदयात् प्रेरयेत् बुद्धी भोक्तृणां सर्व्वकर्म्मसु ॥
दृष्टादृष्ट-विपाकेषु विष्णुः सूर्य्याग्निरूपभाक् ॥ १२ ॥

तथैव तदित्यस्य मन्त्रगतपदस्य व्याख्यां विशिष्य दर्शयति। तज्ज्योतिरित्यर्द्धेन भर्गपदवाच्यं तज्ज्योतिरेव तत्पदेन पूर्व्वमुक्तमित्यर्थः। तच्च भगवान् विष्णुरेव तदेव च वेदान्तेन दर्शितं जगज्जन्मादिकारणमित्यर्थः। मन्त्रे च प्रणवादि–तदित्यन्तस्य धीमहीत्यन्तेनान्वय एव कार्य्यः। स्वयं प्रणवार्थरूपं कारणात् कार्य्यस्यानन्यत्वादिति भूरादिरूपं च तत्त्वं सवितुर्देवस्य वरेण्यं भर्गो धीमहीति ॥ ८ ॥

अथात्र विप्रतिपद्यमानान् स्वमतसात्करोति-शिवं केचिदिति सार्द्धेन स्फुटम् ॥ ९ ॥

तदेवमेव विष्णुसवित्रोः कारणकार्य्ययोस्तयोस्तादात्म्येनाभेदमपि दर्शयति–तत्पदमित्यर्द्धेन। अत्र विष्णोरिति विश्वात्मकमित्यर्थः, तदिति स भर्ग इत्यर्थः॥ १० ॥

धीमहीत्यस्य धात्वन्तरप्रक्रान्तत्वेन तत्त्वेन तमेवार्थं योजयति दधातेरित्यर्द्धेन स्पष्टम् ॥ ११ ॥

अत्र मन्त्रशब्दं योजयति–नोऽस्माकमिति सार्द्धेन। अत्र यच्चेति तदिति च पूर्व्वसूत्रेण सोर्लुका साधितं भर्ग इत्यनेनैव तदित्यस्य सम्बन्धश्च दर्शितः। चोदयात्। प्रेरयात् इत्यनयोः पूर्व्वसिद्धान्तेन द्रढ़यति–विष्णुः सूर्य्याग्निरूपभागिति ॥ १२ ॥

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ १३ ॥
ईशावास्यमिदं सर्व्वं महदादि-जगद्धरिः ।
स्वर्गाद्यैः क्रीड़ते देवो यो हंसः पुरुषः प्रभुः ॥ १४ ॥
ध्यानेन पुरुषोऽयञ्च द्रष्टव्यः सूर्य्यमण्डले ।
सत्यं सदाशिवं ब्रह्म विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ १५ ॥
देवस्य सवितुर्देवो वरेण्यं हि तुरीयकम् ॥ १६ ॥
योऽसावादित्य-पुरुषः सोऽसावहमनुत्तमम् ।
जनानां शुभकर्म्मादीन् प्रवर्त्तयति यः सदा ॥ १७ ॥
(अग्निपुराणे २१६ अध्याये)

अत्र हेतुमाह ईश्वर इत्यर्द्धेन-ईश्वरः पूर्व्वोक्त विष्णुरूपः ॥ १३ ॥

तदेव श्रुत्यन्तरेण प्रमाणयति-ईशावास्यमिति । तस्येशस्य हरिरिति नामान्तरेण विष्णुत्वमेव स्थापयति हरिरित्यर्द्धकेन स्वर्गाद्यैरित्यर्द्धेन हंसः परमात्मा तद्रूपः पुरुषः ॥ १४ ॥

तस्य वरेण्यत्व-पराकाष्ठां दर्शयितुमाह-ध्यानेनेति । ध्यानेन "ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती"त्याद्युद्दिष्टेन । नन्वेवं चेत्तर्हि ईशितव्यस्य सूर्य्यमण्डलस्य नाशे तस्यैश्वर्य्यनाशः स्यात्तत्राह-सत्यमिति । विष्णोर्यत् महावैकुण्ठलक्षणं परमं पदं तत् सत्यं कालत्रयाव्यभिचारि, सदाशिवं तापत्रयरहितञ्च, ब्रह्म बृहत्त्वात् बृंहणत्वाच्च यद् ब्रह्मोच्यते तद्रूपमेवेत्यर्थः ॥ १५ ॥

ननु तस्मिन् महावैकुण्ठे सवित्रन्तर्य्यामिणोऽस्माद् विलक्षण एव नारायणः स च नित्य एव । सवित्रन्तर्य्यामिणोऽस्य तु कीदृक्त्वं तत्राह-देवस्येत्यर्द्धेन । देवस्य द्योतमानस्य सवितुर्यो देवः "ध्येयः सदे"त्यादिषु निर्दिष्टः सोऽपि वरेण्यं तुरीयं समष्टिगतं जाग्रत्स्वप्नाद्यतीतं समाध्यवस्थायामेव गम्यं यत्पदं भर्गसंज्ञकं 'स एकधा भवती'त्यादि श्रुतेः, सर्वाश्रयरूपं यद्वस्तु तद्रूपमेव । महाप्रलये महावैकुण्ठ एव महानारायणेनैकीभूय स्थायित्वादिति भावः ॥ १६ ॥

अथ तत्साम्यादित्यर्थमहंग्रहोपासनारूपं त्रिपदाया अस्याश्चतुर्थस्या अजपा नाम ध्येयस्यार्थमाह–योऽसाविति पदेन स्पष्टम् ॥ १७ ।

इत्यग्निपुराणस्थगायत्रीव्याख्याया विवृतिः
श्रीजीवकृता समाप्ता

विवृति का अनुवाद ।

श्रीसनातन के समान श्रीमान् सनातन जिनके बड़े भ्राता हैं तथा श्रीवल्लभ जिनके लघु भ्राता हैं वे श्रीरूपगोस्वामी, जीव नाम से प्रसिद्ध मेरी उत्तम गतिरूप हैं। श्लेष में जीवों की सद्गति हैं ॥

अब अग्निपुराण में स्थित गायत्री–व्याख्या का विवरण विस्तार रूप से वर्णन करते हैं। उक्थानि प्रणवात्मक मन्त्रसमूह हैं। शास्त्रों का अर्थ समस्त वेद हैं। वक्ष्यमाण विष्णुरूप तेज को भर्ग कहते हैं। प्राणों का अर्थ समस्त जीवों के कारण–भूत वस्तुऐं हैं, किम्वा विभूतियाँ हैं। इन वस्तुओं को जिससे प्रकाश करती है, अतः गायत्री करके कही जाती है। वेदमय सविता का प्रादुर्भाव करने वाली है इसलिये सावित्री भी है। "उससे सूर्य्य की सृष्टि है" ऐसा श्रुति में कथन है। वाणी रूपा होने के कारण वह सरस्वती भी है ॥ १ ॥

अव गेय वस्तुओं में प्रधान भर्ग है उसका विवरण कहते हैं। जो यह भर्ग है वह उस प्रसिद्ध परब्रह्म है। अर्थात् प्रसिद्ध परब्रह्म ही भर्ग शब्द से कहा जाता है। क्योंकि भर्ग ही तेजः करके माना गया है। स्वयं प्रकाश, ज्योतिरूप से निर्दिष्ट वस्तु तेजः है। अच्छा? किस निरुक्ति के वल से उस भर्ग को तेजः रूप से निर्देशित् करते हो? उसके उत्तर में कहते हैं–भ्राजमान वस्तु ही भर्ग है। वह

किस प्रकार सिद्ध हो सकता है ? कहते हैं–भगवान् पाणिनि ऋषि ने "बहुलं छन्दसि" इस प्रकार सूत्र का निर्देश किया है ॥ २ ॥

अब भर्ग को वरेण्यत्व की साधना बतलाते हैं–वह भर्ग–वरेण्य है। वह सब का आश्रय वस्तुस्वरूप होने का कारण परम पद वाच्य है। अच्छा ? वरेण्य क्या वस्तु है ? कहते हैं–समस्त तेजों में श्रेष्ठ वस्तु वरेण्य है। भावार्थ यह है–समस्त प्रकाशों के प्रकाशक रूप अर्थात् मूल प्रकाशक स्वप्रकाश स्वरूप वस्तु वरेण्य करके कहा जाता है ॥ ३ ॥

इस प्रकार भर्ग का वरेण्य पद के द्वारा रुढ़िवृत्ति से श्रेष्ठत्व दिखाकर अब योगवृत्ति के द्वारा उसका सर्व्व प्रार्थनीयत्व दिखाते हैं। स्वर्ग-अपवर्ग कामनाकारी सब के लिये सर्व्वदा प्रार्थनीय है ॥ ४ ॥

उसी अर्थ के सम्पादक धात्वर्थ का कारणरूप से निर्देश करते हैं। वृणु धातु का वरणार्थत्व स्पष्ट है ॥ ५ ॥

अनन्तर "परमत्व" जनाने के लिये पुनः श्रेष्ठत्व का निर्देश करते हैं–जो जाग्रत्-स्वप्न से विवर्जित है अर्थात् तुरीयावस्थ जीव से भी पर है ॥ ६ ॥

इस प्रकार भर्ग वरेण्य पदों का अर्थ दिखाकर अब वाक्य का प्रयोजन बतलाते हैं। हम भर्ग का ध्यान करते हैं। भर्ग पद का विशेषण नित्य-शुद्ध-बुद्ध-एक-नित्य-अधीश्वर है। अहं अर्थात् हम इति पद का विशेषण ब्रह्म है। वहाँ नित्य शब्द का अर्थ सर्व्वदा शुद्ध वस्तु है। जीव की भाँति संसारी अवस्था विशिष्ट नहीं है। बुद्ध शब्द का अर्थ सदा ही बोध युक्त है। एक शब्द का अर्थ सर्व्वदा एक वस्तु है, जीव की भाँति अनेक नहीं है। अधीश्वर का अर्थ समस्त शक्ति से युक्त है। "हम ब्रह्म परम ज्योति रूप हैं" यहाँ देवता बन कर देवता की पूजा करें, नहीं तो नहीं" इस न्याय से अपने को ब्रह्म के साथ अभिन्नता, तादात्म्य-भावना रूप से

जानना चाहिये। नहीं तो अभिन्न हो जाने पर ध्यान नहीं घटना है। "ध्यायेमहि" क्रिया का अर्थ केवल हम ध्यान नहीं करते हैं परन्तु समस्त हम सब जीव ध्यान करते हैं। अच्छा ? किस लिये ध्यान करते हैं ? उत्तर में कहते हैं- विमुक्ति के लिये अर्थात संसार मोचन के साथ उसकी प्राप्ति के निमित्त। इस प्रकार इनके मत में भर्ग शब्द का अदन्त-पुंलिंगत्व सिद्ध होने पर मन्त्र का भी इस प्रकार व्याख्या होनी चाहिये। "सुपां सुलुग्" इत्यादि छान्दस सूत्र के द्वारा द्वितीयाविभक्ति से एक वचन का अम प्रत्यय को सुत्व का आदेश है। इस प्रकार वहाँ "य" एसा कहेंगे। य इस शब्द के द्वारा सविता का आकर्षण नहीं किया जाता है। "सविता-मण्डल के मध्यवर्ती ब्रह्म सर्व्वदा ध्येय स्वरूप है" ऐसा विधान है। इसलिये "इस भर्ग के उपदेश द्वारा" इस प्रकार न्याय भी है ७॥

अब उसी प्रकार मन्त्रगत "तद्" इस पद की व्याख्या विशेष रूप से दिखलाते हैं-भर्ग पदवाच्य वह ज्योति ही तत् पद से पहले कहा गया है। वह भगवान् विष्णु ही माने गये हैं। वेदान्त शास्त्र जगत का जन्मादि कारण स्वरूप भगवान् विष्णु को ही कहा गया है। इस मन्त्र में-प्रणव से आदि तत् से अन्त के साथ धींमहि का अन्वय कर्त्तव्य है। स्वयं प्रणव के अर्थ रूप कारण से कार्य का अनन्यत्व है। अतः भूमि आदि कार्य्य समूह कारणरूप प्रणव स्वरूप हैं। सविता-देव के वरेण्य भर्ग को हम ध्यान करते हैं॥ ८॥

कोई शिव, कोई शक्तिरूप, कोई सूर्य्य, अग्निहोत्री कोई अग्नि दैवत रूप में पाठ करते हैं। वेदादि में अग्नि आदिक रूपी विष्णु ही ब्रह्म करके गाये जाते हैं॥ ९॥

इस प्रकार कारण-कार्य्य रूप विष्णु सविता के तादात्म्य रूप से अभेदत्व दिखता है। देवदेव विष्णु तथा सविता का वह परम पद है॥ १०॥

यहाँ विष्णु का विश्वात्मकत्व सुसिद्ध है। धीमहि यहाँ धात्वन्तर प्रक्रान्त के द्वारा उसी अर्थ की योजना करते हैं। "दधातेः" अर्थात् धारणार्थ में ऐसा अथ होता है। अर्थ—उस वरेण्य भर्ग को मन के द्वारा हम सब धारण करते हैं ॥ ११ ॥

अब मन्त्र को घटाते हैं—जो भर्ग है वह हम सब प्राणियों की बुद्धि की प्रेरणा करें। विष्णु ही सूर्य्य-अग्नि रूप से भोक्ताओं के दृष्ट-अदृष्ट-विपाकरूप सत्वकर्म्मों में बुद्धि का प्रेरक होता है ॥१२॥

जीव ईश्वर के द्वारा प्रेरित होकर स्वर्ग-नरकादि का प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

उसी अर्थ को श्रुति के द्वारा प्रमाणित करते हैं। समस्त महत् आदि जगत् ईश करके व्याप्त हैं। वे ईश हरि तथा विष्णु नाम से स्वर्गादि में क्रीडा करते हैं तथा जो देव परमात्मा परम पुरुष, प्रभु करके गाये जाते हैं ॥ १४ ॥

उस भर्ग की वरेण्य पराकाष्ठा को दिखाते हुए कहते हैं—यह परम पुरुष सूर्य्यमण्डल में ध्यान के द्वारा दर्शनीय हैं। "सूर्य्यमण्डल के मध्य में विष्णुदैवत का ध्यान करें" इस प्रकार शास्त्र में कहा है। अच्छा? यदि ऐसा ही है तब ईश के आधार स्थान सूर्यमण्डल का नाश होने पर देवता का ऐश्वर्य्य भी नाश हो सकता है? उसका उत्तर देते हैं—विष्णु का महावैकुण्ठ रूप जो परम पद है अर्थात् कालत्रय में व्यभिचार प्राप्त नहीं हैं। सदाशिव का अर्थ तापत्रय से रहित शुद्ध वस्तु है। जो वृहत् वस्तु है तथा जो वृंहण कारक है वह ब्रह्म है अर्थात् वह ब्रह्म रूप है ॥ १५ ॥

अच्छा? उस महावैकुण्ठ में नित्य विराजमान श्रीनारायण के साथ सूर्य्यमण्डलवर्त्ती पुरुष की विलक्षणता है। नारायण तो नित्य वस्तु है। सूर्यमण्डल अन्तर्यामी पुरुष किस प्रकार है। कहते हैं—

द्योतमान सूर्य्य का जो देव है जो सदा सूर्य्यमण्डल मध्यवर्ती ध्येय स्वरूप से निर्दिष्ट है वह भी वरेण्य स्वरूप है, समष्टिगत वस्तु है, जाग्रत् स्वप्नादि से अतीत, केवल समाधि अवस्था में गम्य है। भर्गसंज्ञक जो पद है "वह एक होता है बहु भी होता है" इस प्रकार श्रुति में कहा है। सब के आश्रय-रूप जो वस्तु है वह उस का रूप है। महाप्रलय के समय महावैकुण्ठ में महानारायण के साथ एक होकर विराजमान होता है यह भावार्थ है ॥ १६ ॥

आदित्यमण्डल मध्यवर्ती जो पुरुष है वह सर्वोत्तम हम हैं। जो सर्व्वदा मनुष्यों के शुभादि कर्मो को प्रवर्त्तित करता है। यहाँ साम्यार्थ में अभेदभावना है। यह अहंग्रहोपासनामयी है ॥ १७ ॥

अनुवादक-

कृष्णदास

गौरः सच्चरितामृतामृतनिधि गौरं सदैव भजे
गौरेण प्रथितं रहस्यभजनं गौराय सर्व्वं ददे।
गौरादस्ति कृपालुरत्र न परः गौरस्य भृत्योऽभवं
गौरे गौरवमाचरामि भगवन् गौरप्रभो! रक्ष माम् ॥
(गौरांगविरुदावल्याम् ॥)
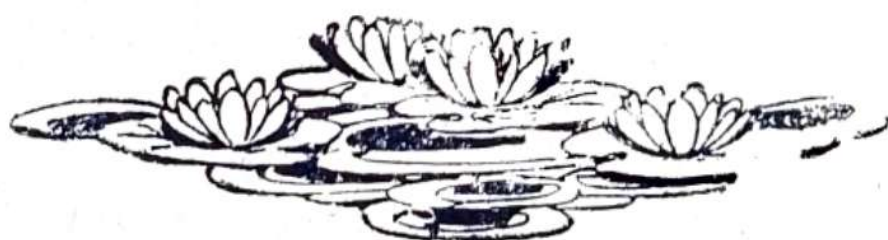
[सूत्र उपासना वैष्णवपूजाविधिः]

प्रथमतः श्रीराधाकृष्णस्मरणम् ।

आसनोपरि उपविश्य सिद्धदेहं भावयेत् ।

श्रीगुरुभ्यो नमः, श्रीपरमगुरुभ्योनमः, श्रीपरात्परगुरुभ्यो नमः ॥ १ ॥

शङ्ख प्रक्षालनं–शंखे जलं पूरयित्वा शंखे तीर्थावाहनं–

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्म्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ॥

इति मन्त्रेण शङ्खसंस्कारं कुर्यात् । नीराजनमुद्रां शङ्खोपरि दर्शयित्वा शङ्ख मुद्रां दर्शयेत् । धेनुमुद्रां दर्शयेत् । शङ्खोपरि मूलमन्त्रेण त्रिधा जपेत् । शङ्खजलेन घण्टाप्रक्षालनं-जगद्घूर्णात्मने नमः, अनेन मन्त्रेण वामहस्तेन घण्टावादनं, मूलमन्त्रेण श्रीकृष्णाय पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ॥ २ ॥

पहले श्रीराधा-कृष्ण का स्मरण करें—

आसन के ऊपर बैठ कर निज सिद्धदेह की भावना करें । "श्रीगुरुभ्यो नमः" श्रीपरमगुरुभ्यो नमः" इत्यादि प्रकार से गुरु-परम्परा का नमस्कार करें ॥१॥

अब शंखप्रक्षालन की विधि कहते हैं–शंख में जल भर कर "गंगे च यमुने चैव" इस मन्त्र से उस में तीर्थों का आवाहन कर शंख का संस्कार करें । शंख के ऊपर नीराजन मुद्रा दिखा कर पुनः शंख मुद्रा को दिखावे । पुनः धेनुमुद्रा दिखाकर शंख के ऊपर-भाग में तीन वार मूलमन्त्र का जप करें ।

अब घंटा वादन की विधि कहते हैं–शंखजल से घण्टा का प्रक्षालन कर "जगद्घूर्णात्मने नमः" इस मन्त्र का पाठ कर वाम हाथ से घण्टावादन तथा मूलमन्त्र से श्रीकृष्ण को पुष्पाञ्जलि देवें ॥ २ ॥

अथ श्रीवृन्दावनध्यानम्-

भद्र श्री-लोह भाण्डिर महाताल-खदिरका: ।
बहुलं कुमुदं काम्यं मधु-वृन्दावनं तथा ॥
द्वादशैतान्यरण्यानि कालिन्द्या: सप्त पश्चिमे ।
पूर्वे पञ्चवनं प्रोक्तं तत्रातिगुह्यमुत्तमम् ॥

तत्र यमुनावेष्टितनिकुञ्जम् । ततो दिव्योद्यानम् । तन्मध्ये कल्पतरुम । तत्राधो हेमस्थली । तत्र मणिकुट्टिमम् । तदुपरि महायोगपीठम् । तत्र रत्नपङ्कजम् । तत्र कर्णिकायां राधाकृष्णौ ध्यायेत् ।

वृन्दावनं दिव्यलतापरीतं लताश्च पुष्पास्फुरिताग्रभाज: ।
पुष्पाण्यपि स्फीतमधुव्रतानि मधुव्रताश्च श्रुतिहारिगीता: ॥
दिव्यद्वृन्दारण्य कल्पद्रुमाध: श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ ।
श्रीमद्राधाश्रीलगोविन्ददेवौ प्रेष्ठालिभि: सेव्यमानौ स्मरामि ॥३॥

अब वृन्दावन का ध्यान कहते हैं—भद्रवन, श्रीवन, लोहवन, भाण्डीरवन, महावन, तालवन, खदिरवन, बहुलावन, कुमुदवन, कामवन, मधुवन, श्रीवृन्दावन ये बारह वन हैं। यमुना की पश्चिम दिशा में सात तथा पूर्व दिशा में अति गुह्य पांच बन मौजूद हैं। वहाँ यमुना जी से वेष्टित निकुञ्ज है, उसमें दिव्य उद्यान है. उस उद्यान के बीच कल्पतरु है, उस कल्पतरु के नीचे सुवर्ण स्थली है उस में मणिमय गृह है, उसके ऊपर महायोगपीठ है, उस योगपीठ में रत्नकमल है, उस कमल की कर्णिका में राधाकृष्ण का ध्यान करें।

श्रीविदग्धमाधव नाटक में-बृन्दावन दिव्यलताओं से परिवेष्टित है। अग्रभाग में पुष्पों से शोभायमान लतावली हैं। उन लताओं में पुष्प सब भ्रमरों से परिशोभित हैं तथा भ्रमर सब कर्ण रसायन मनोहर गान करने वाले हैं॥

शोभायमान दिव्यातिदिव्य श्रीवृन्दारण्य के कल्पद्रुम के नीचे श्रीरत्नमय गृह है। उसमें परम मनोहर सिंहासन में प्रिय सखियों

अथ मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। ततः श्रीकृष्णध्यानं कुर्यात् ॥

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसं प्रियं
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।
गोपीनां नयनोत्पलार्च्चिततनुं गोगोपसंघावृतं
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्यांगभूषं भजे ॥४॥

मूलमन्त्रेण त्रिवारं जपेत्। पुनः पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। ततः श्रीराधाध्यानं कुर्यात्। श्रीकृष्णस्य वामपार्श्वे–

तप्तहेमप्रभां नीलकुन्तला–बद्धमल्लिकाम्।
शरच्चन्द्रमुखीं नृत्यच्चकोरीचञ्चलेक्षणाम् ॥
विम्बाधरस्मितज्योत्स्ना–जगज्जीवनदायिकाम्।

से सेव्यमान तथा विराजमान श्रीराधा श्रीगोविन्द का स्मरण करता हूँ। ३ ॥

मूलमन्त्र से तीन वार पुष्पाञ्जलि देकर श्रीकृष्ण का ध्यान करें। ध्यान इस प्रकार है-फुल्लायमान नीलकमल की भाँति कान्ति वाले, चन्द्रवदन, मयूरपुच्छधारण से प्रिय. श्रीवत्सचिन्ह से शोभायमान, कौस्तुभधारी, उदार, पीताम्बर, परममनोहर, गोपियों के नयन कमलों के द्वारा अर्च्चायमान, दिव्यातिदिव्य शरीरवाले, गौ-गोप समूह से वेष्टित, कलवेणुवादनकारी, दिव्यातिदिव्य अंग-भूषणों से भूषित श्री गोविन्द का भजन करते हैं ॥ ४ ॥

फिर मूलमन्त्र का तीन बार जप कर तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करें। उसके अनन्तर श्रीराधिका जी का श्रीकृष्ण के वाम भाग में ध्यान करें। ध्यान इस प्रकार है-तपायमान सुवर्ण की भाँति कान्तिवाली, नीलकुञ्चित-केशों में मल्लिकामाला धारण-कारिणी, शरत्चन्द्रमा की भाँति मुखवाली, नृत्यकारी चकोरी की भाँति चञ्चल नेत्रशाली, विम्बाधर के स्मित किरणों से जगज्जीवों

चारु रत्नस्तनालम्बिमुक्तादामविभूषिताम् ॥
नितम्बनीलवसनां किङ्किणिजालमण्डिताम् ।
नानारत्नादिनिर्माण रत्ननूपुरधारिणीम् ॥
सर्व्वलावण्यमुग्धाङ्गीं सर्व्वावयवसुन्दरीम् ।
कृष्णपार्श्वस्थितां नित्यां कृष्णप्रेमैकविह्वलाम् ॥
आनन्दरससंमग्नां किशोरीमाश्रयेद्वने ॥ ५ ॥

अथ श्रीराधिकामन्त्रं त्रिवारं जपेत् । पुनः पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । ततः श्रीकृष्णाय आवाहनादिमुद्रां दर्शयेत् । आवाहनसंस्थापन-सन्निधापन-सकलीकरण-अवगुण्ठनामृतीकरण-परमीकरणानि कुर्य्यात् । देवाङ्गेषु मूलमन्त्रसहितसकलीकरणं न्यासं कुर्य्यात् मूलमन्त्रमुच्चार्य्य-"श्रीकृष्ण अत्रागच्छ. श्रीकृष्ण इह तिष्ठ, श्रीकृष्ण इह सन्निहितो भव, श्रीकृष्ण इह सर्व्वाङ्गं दर्शय, श्रीकृष्ण त्वां गोप-

---

की प्राणदायिनी, मनोहर रत्न तथा स्तनालम्बि मुक्तामालाओं से विभूषिता, नितम्बदेश में नीलवस्त्रधारिणी, किंकिणि समूह से परिमण्डिता, नाना रत्नों से निर्म्मित रत्ननूपुरधारिणी, समस्त लावण्यता से मोहितांगी, सर्व्वावयव से सुन्दरी, श्रीकृष्ण के पार्श्वभाग में नित्य विराजमाना, श्रीकृष्णप्रेम में विह्वला, आनन्द-रस में संमग्ना, किशोरी श्रीराधिका जी का हम इस वृन्दावन में आश्रय करते हैं ॥ ५ ॥

अब तीन वार श्रीराधिका मन्त्र का जप कर तीन बार पुष्पाञ्जलि का प्रदान करें । अनन्तर श्रीकृष्ण के लिये आवाहनादि मुद्रा दिखावें । आवाहन-संस्थापन-सन्निधान-सकलीकरण-अवगुंठन-अमृतीकरण-परमीकरण इन मुद्राओं को क्रम से दिखा कर देवता के अङ्गों में मूलमन्त्र पाठ के साथ सकलीकरण न्यास करें । मूलमन्त्र का उच्चारण कर हे श्रीकृष्ण यहाँ आइये, श्रीकृष्ण ! यहाँ ठहरिये, श्रीकृष्ण ! यहाँ स्थिर रूप से विराजमान कीजिये, श्रीकृष्ण

यामि, श्रीकृष्ण अमृतमयोऽसि, श्रीकृष्ण परमोऽसि" इत्यादिकं पठित्वा तान् न्यासान् कुर्य्यात् ॥ ६ ॥

अथ पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। आचमनं नमः। कनककेयूरादि नूपुरादि अलङ्कारं समर्पणं। श्रीराधाकृष्णौ स्वस्थाने उपविश्य अथ आवरणपूजां कुर्य्यात्। ललितादिअष्टसखीभ्यो नमः। ललितादि अष्टसखीभ्यो आचमनीयं नमः। ललितादि अष्टसखीभ्यो स्नानादिकं वेषभूषणं परिकल्पयेत्।

उत्तरे ललितादेवी ईशाने च विशाखिका।
पूर्वे चित्रा तथा चाग्निकोणे चम्पकवल्लिका॥
दक्षिणे तुङ्गविद्या च नैऋते इन्दुलेखिका।
पश्चिमे रङ्गदेवी च वायव्ये च सुदेविका॥

स्वनाम-चतुर्थ्यन्ते नमः मन्त्रेण श्रीराधाकृष्णयोः चतुः पार्श्वे स्थित अष्टसखीं पूजयेत्। श्रीललिताय नमः। श्रीविशाखायै नमः।

सर्व्वाङ्ग का अवलोकन कराइये, श्रीकृष्ण! तुम्हारा गोपन करता हूँ, श्रीकृष्ण! आप अमृतमय हैं, श्रीकृष्ण! आप परात्पर हैं इस प्रकार पाठ कर उन न्यासों को दिखावें ॥ ६ ॥

अनन्तर तीन बार पुष्पाञ्जलि अर्पण कर आचमन देवें। पश्चात् सुवर्णकेयूर-नूपुरादि अलङ्कारों का समर्पण करें तथा श्रीराधाकृष्ण को अपने स्थान में बैठा कर आवरण पूजा करें। "ललितादिअष्टसखीभ्योनमः" ललितादि अष्टसखीभ्यो आचमनीयं नमः" यह सब मन्त्र हैं। अथ ललितादि-अष्टसखियों को स्नानादि करा कर वेष भूषणादि की कल्पना करें।

उत्तर में ललितादेवी, ईशानकोण में विशाखा, पूर्व्व में चित्रा, अग्निकोण में चम्पकलता, दक्षिण में तुंगविद्या, नैऋत में इन्दुलेखा, पश्चिम में रंगदेवी, वायुकोण में सुदेवीजी मौजूद रहती हैं। निज नाम में चतुर्थ्यन्त देकर नमः शब्द का संयोग करने पर उनका

श्रीचम्पकलतायै नमः। श्रीचित्रायै नमः । श्रीतुङ्गविद्यायै नमः। श्रीइन्दुलेखायै नमः । श्रीसुदेव्यै नमः । श्रीरङ्गदेव्यै नमः ।।७।।

ताम्बूलभक्तौ ललिता विशाखा गन्धचन्दने ।
चामरे चम्पकलता चित्रा वसनकर्म्मणि ।।
नानावाद्ये तुङ्गविद्या इन्दुलेखा च नर्त्तने ।
सुदेवी जलसेवायां रागे च रङ्गदेविका ।। ८ ।।

ततः अष्टकोणेषु अष्टमञ्जरी परिकल्पयेत् । अष्टमञ्जरीभ्यो नमः। स्नानं नमः। वेशभूषणादिकं कल्पयेत् पूर्वादिक्रमेण । श्रीलवङ्गमञ्जर्य्यै नमः । श्रीरूपमञ्जर्य्यै नमः । श्रीरतिमञ्जर्य्यै नमः । श्रीगुणमञ्जर्य्यै नमः । श्रीरसमञ्जर्य्यै नमः । श्रीमञ्जुलालिमञ्जर्य्यै नमः । श्रीविलासमञ्जर्य्यै नमः । श्रीकस्तूरिमञ्जर्य्यै नमः । पूर्वे गोपालकन्यायै नमः।

मन्त्र बनता है। यथा–"श्रीललितायै नमः" "श्रीविशाखायै नमः" इत्यादि प्रकार है। इन अष्टसखियों की श्रीराधाकृष्ण के चतुः पार्श्व में पूजा करें ।।७।।

ताम्बूलसेवा में ललिता, गन्धचन्दन सेवा में विशाखा, चामरसेवा में चम्पकलता, वस्त्रसेवा में चित्रा, नानावाद्य में तुंगविद्या, नर्तन में इन्दुलेखा, जलसेवा में सुदेवी, गन्धरागादि सेवा में रंगदेवी जी हैं ।। ८ ।।

अनन्तर अष्टकोणों में अष्टमञ्जरी की परिकल्पना करें। "अष्टमञ्जरीभ्यो नमः आचमनं नमः, स्नानं नमः" इस प्रकार कह कर उन की पूजा करें तथा वेष-भूषादियों से भूषित करावें। अनन्तर पूर्वदिशा में "श्रीलवङ्गमञ्जर्य्यै नमः" अग्निकोण में 'श्रीरूपमञ्जर्य्यै नमः, दक्षिणदिशा में "श्रीरतिमञ्जर्य्यै नमः" नैऋत में "श्री गुणमञ्जर्य्यै नमः" पश्चिम में "श्रीरसमञ्जर्य्यै नमः" वायुकोण में "श्रीमञ्जुलालिमञ्जर्य्यै नमः" उत्तर में "श्रीविलासमञ्जर्य्यै नमः" ईशान में "श्रीकस्तूरीमञ्जर्य्यै नमः" इस प्रकार कह कर उन दिशाओं

दक्षिणे श्रुतिकन्यायै नमः । पश्चिमे मुनिकन्यायै नमः । उत्तरे देवकन्यायै नमः ॥ ६ ॥

गंध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यं श्रीकृष्णस्य पुरतः स्थापनं कृत्वा मुद्रान् दर्शयेत्।

श्रीवत्स-कौस्तुभ-वेणुं अभीतिवरदं तथा।
घन-मालां तथा मन्त्री दर्शये कृष्णपूजने ॥

तदनन्तरं मूलमन्त्रेण धूप-दीपं घण्टावाद्यसहितं दद्यात् नानाविध मिष्टान्नं संस्कारं कुर्यात्। नैबेद्योपरि शङ्खजलं प्रोक्षिप्य तुलसीमञ्जरीं प्रोक्षिप्य अवगुंठनामृतिकरणादिकं कृत्वा धेनुमुद्रां दर्शयित्वा मूलमन्त्रेण नैवेद्यस्पर्शनं कुर्य्यात्। श्रीकृष्णाय पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। मूलमन्त्रेण श्रीकृष्णाय नैवेद्यं दद्यात्। प्राणाय स्वाहा। पानाय स्वाहा। व्यानाय स्वाहा। उदानाय स्वाहा। समानाय स्वाहा। भुक्तान्नं इति कल्पयेत्। मूलमन्त्रेण श्रीराधां पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। मूलमन्त्रेण श्रीराधां नैवेद्यं दद्यात्। ततः स्थानान्तरं गच्छेत्। किञ्चित्कालं अपेक्ष्य। ततः श्रीकृष्णाय आचमनं नमः। श्रीराधायै

में उन मञ्जरियों की पूजा करें। पुनः पूर्व्व दिशा में "गोपालकन्यायै नमः" दक्षिण में 'श्रुतिकन्यायै नमः' पश्चिम में "मुनिकन्यायै नमः" उत्तर में "देवकन्यायै नमः" से कन्यकाओं की पूजा करें ॥ ६ ॥

अनन्तर गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यादि वस्तुओं को श्रीकृष्णाग्र में स्थापित कर मुद्राओं को दिखावें। श्रीवत्समुद्रा, कौस्तुभमुद्रा, वेणुमुद्रा, वरदमुद्रा, घनमुद्रा, मालामुद्राओं का श्रीकृष्ण-पूजन में मन्त्री दर्शन करावें। अनन्तर मूलमन्त्र पाठ से घण्टावाद्य के साथ धूप-दीप का प्रदान करें।

अथ नाना प्रकार मिष्टान्न संस्कार करें। नैवेद्य के ऊपर शङ्ख-जल का सींचन कर तुलसी मञ्जरी धरें। फिर अवगुंठन-अमृतीकरणादि करा कर धेनुमुद्रा दिखा कर मूलमन्त्र के पाठ से नैबेद्य

आचमनं नमः। ललितादि अष्टसखीभ्यो नैवेद्यं नमः। श्रीराधिका-परिवारेभ्यो नैवेद्यं नमः।

इति कल्पयेत्। आचमनं नमः। श्रीराधाकृष्णाभ्यां अष्टपुष्पाञ्जलिं दद्यात्। श्रीराधादामोदराभ्यां नमः। श्रीराधामाधवाभ्यां नमः। श्रीवृषभानुकिशोरीगोपेन्द्रनन्दनाभ्यां नमः। श्रीगोविन्द-प्रियसखीगान्धर्वाभ्यां नमः। श्रीकुञ्जनागरीनागराभ्यां नमः। श्रीगाष्ठकिशोरीकिशोराभ्यां नमः। श्रीवृन्दावनाधिपाभ्यां नमः। श्री-कृष्णवल्लभाभ्यां नमः॥ १०॥

तदनन्तरं श्रीराधाकृष्णाभ्यां गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलादि-समर्पणम्। अथ आरात्रिकं कुर्यात्। ब्रह्माण्डपुराणे-

आदौ चतुः पादतलैकदेशे द्वौ नाभिमध्ये मुखमण्डले चैकम्।
सर्व्वाङ्गदेशे शुचि सप्तवारं आरात्रिकं कृष्णसमं प्रकुर्य्यात्॥

का स्पर्श करें। श्रीकृष्ण के लिये तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान कर मूलमन्त्र पाठ से उनका नैवेद्य का समर्पण करें। अन्न-भोजन कराने के समय "प्राणाय स्वाहा" "पानाय स्वाहा" "व्यानाय स्वाहा" उदानाय स्वाहा" "समानाय स्वाहा" इन मन्त्रों की परिकल्पना करें। मूलमन्त्र से श्रीराधिका जी के लिये तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर पुनः उसी मन्त्र से श्रीराधिका के लिये नैवेद्यादि अर्पण कर स्थानान्तर में जाकर किञ्चित्काल अपेक्षा करें। अनन्तर "श्रीकृष्णाय आचमनं नमः" 'श्रीराधायै आचमनं नमः' "श्रीललितादि अष्टसखीभ्यो नैवेद्यं नमः", श्रीराधिकापरिवारेभ्यो नैवेद्यं नमः" इस प्रकार मन्त्र पाठ कर आचमनादि करें। अनन्तर श्रीराधादामोदराभ्यां नमः" "श्रीराधामाधवाभ्यां नमः" इत्यादि प्रकार कह कर राधाकृष्ण के लिये आठ बार पुष्पाञ्जलि का प्रदान करें॥ १०॥

कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः ।
दहत्यालोकमात्रेण विष्णोः सारत्रिकं मुखम् ॥ ११ ॥

आरात्रिकोपरि शङ्खजलं प्रक्षिप्य तुलसीमञ्जरीं दत्वा अवगुण्ठनामृतिकरणानि कुर्य्यात् । ततः श्रीराधाकृष्णाभ्यां पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । ततः देवस्य नेत्रादि द्वादशाङ्गपर्य्यन्तं पारावत-भ्रमाकारं बन्दापयेत् । तदनन्तरं श्रीराधाकृष्णोपरि शङ्ख आरात्रिकं कुर्यात् । शङ्खतोयं स्वशिरसि प्रक्षिप्य वाह्यं किञ्चित्प्रक्षपयेत् ॥ १२ ॥

इति श्रीरूपगोस्वामिना विरचितं सूत्रउपासनावैष्णवपूजाविधिपटलं समाप्तम्

अथ गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलादि समर्पण कर आरती करें । ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है–

पहले पादों के तल भाग में चार वार, नाभिदेश में दो वार, मुखमण्डल में एक वार, सर्व्वाङ्ग में सात वार पवित्र श्रीकृष्ण के लिये आरती करें । आरत्रि संयुक्त श्रीकृष्ण के मुखारविंद का दर्शन मात्र से कोटि २ ब्रह्महत्या, अगम्यागम्य पाप नाश हो जाते हैं॥११॥

आरत्रिक के ऊपर शंखजल सींचन कर तुलसीमञ्जरी प्रदान कर अवगुण्ठन-अमृतीकरणादि करें । अनन्तर श्रीराधाकृष्ण के लिये तीन वार पुष्पाञ्जलि देकर उनके नेत्र से लेकर द्वादश अङ्गों में पारावत भ्रमण की भाँति आरती का घुमावें । अथ श्रीराधाकृष्ण के लिये शङ्ख से आरती करें । शङ्खजल को निज मस्तक में फेंक कर किञ्चित वाहिर में फेंके ॥ १२ ॥

गौराङ्गोऽगणितं गमो गुणगणं गीर्व्वाणगोत्रो गवां
ग्लानिं गाढ़तमां गिलन् गृहरुचि गान्धारगीतेर्गुरुः ।
गञ्जन्गोत्रसमं गजं गतिरुचा गाम्भीर्य्यतो गोनिधिं
गाङ्गेयं गुरुगौरवेण गदतो गीः पद्धतिं गाहताम् ॥
(श्री श्रीगौराङ्गविरुदावल्याम्)

॥ युगलाष्टकम् ॥

कृष्णप्रेममयी राधा राधा प्रेममयो हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्म्मम ॥ १ ॥
कृष्णस्य द्रविणं राधा राधाया द्रविणं हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्म्मम ॥ २ ॥
कृष्णप्राणमयी राधा राधाप्राणमयो हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्म्मम ॥ ३ ॥
कृष्णद्रवमयी राधा राधाद्रवमयो हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्म्मम ॥ ४ ॥
कृष्णगेहे स्थिता राधा राधागेहे स्थितो हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्म्मम ॥ ५ ॥
कृष्णचित्तस्थिता राधा राधाचित्तस्थितो हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्म्मम ॥ ६ ॥
नीलाम्बरधरा राधा पीताम्बरधरो हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्म्मम ॥ ७ ॥
वृन्दावनेश्वरी राधा कृष्णो वृन्दावनेश्वरः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्म्मम ॥ ८ ॥

इति श्रीजीबगोस्वामिना बिरचितं
श्री श्रीयुगलाष्टकं सम्पूर्णम् ॥
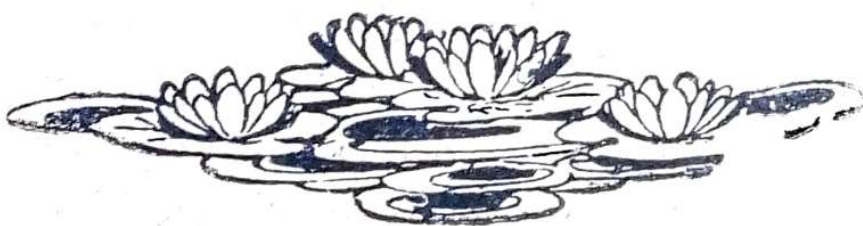
❀ श्रीकृष्णप्रेमामृतम् ❀

श्री श्रीगौरचन्द्राय नमः ।

जयति जननिवासो देवकी-जन्मवादो
यदुवरपरिषत् स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्म्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मित-श्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां बर्द्धयन् कामदेवम् ।।१।।

तत्र तावदेकदा राधा यमुनां गन्तुकामा रामाः समाहूतवती ।

कर्पूरमञ्जरि कलावति चन्द्रलेखे
मुग्धानने सुमुखि सुन्दरि कम्बुकण्ठि ।
आगच्छताम्बुहरणाय गृहीतकुम्भाः
संभूय मन्दपवनां यमुनां व्रजामः ।।२।।

श्रीश्रीगौराङ्गमहाप्रभुर्जयति

जगन्नियन्ता, देवकीगर्भसंभूत, स्थावर-जंघम प्राणियों के पाप-नाशन श्रीहरि निज यादव परिकरों के साथ अपने भुजाओं के द्वारा अधर्म्म का नाश करते हुए तथा मन्दहास्य से शोभित श्रीमुख-चन्द्रमा के द्वारा व्रजपुरवासिवनिताओं का कामदेव अर्थात् प्रेम-समुद्र को बढ़ाते हुए जय प्राप्त हो रहे हैं ।। १ ।।

पहले जलाहरण लीला का वर्णन करते हैं । एक समय वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधा यमुना जाने की इच्छा करती हुई व्रजवालाओं को बुलाने लगीं । हे कर्पूरमञ्जरि ! हे कलावति ! हे चन्द्रलेखा ! हे मोहितमुखवाली ! हे सुन्दरमुखी ! हे सुन्दरि ! हे कम्बुकण्ठ ! तुम सब कलश लेकर आओ, जल भरने के लिये यमुना चलेगीं । सखियों ! स्मरण तो करो । वहाँ किस प्रकार मन्द सुहावनि पवन बहता है ।। २ ।।

एतन्निशम्य वचनं मृगलोचनायाः
दूरे विहाय गृहकर्म्म गृहीतकुम्भाः।
दामोदराननविलोकनलोलचित्ता
गोप्यो जलाय चलिता ललितांघ्रिपाताः॥३
सव्यां घटीः कटितटे सरसं दधाना
वामेतरां भुजलतामतिलोलयन्त्यः।
शश्वन्मिथप्रियकथा स्मितसुन्दरास्या
गोपालबालललनाः यमुनां प्रयाताः॥४॥
अन्योन्यमारब्धभुजाभुजेन स्नातुं प्रयान्त्यस्तपनात्मजायाम्।
मन्दस्खलच्चारुकुचाभिरामा गायन्ति शश्वच्चरितं मुरारेः॥५॥
ततो यमुनां गत्वा—

मृगनयनी श्रीराधिका के इस प्रकार वचनों को सुन कर गोपी सब दूर में गृहकार्य्य छोड़ काँख में कलश लेकर यमुना के लिये चलने लगीं। वे सब श्री दामोदर के अवलोकन के लिये चञ्चल चित्तवाली थीं तथा उनका चरणक्षेपण बहुत मनोहर था॥ ३॥

वे सब व्रज बालायें काँख में कलश को धर कर दाहिने हाथ को हिलाती हुई यमुना के लिये चलने लगीं। निरन्तर पारस्परिक प्रिय श्यामसुन्दर के लीला-चरित्रों का कीर्त्तन करने के कारण उनके मुखकमल प्रफुल्ल रहे थे। अत्यन्त हर्ष से एक दूसरे के भुजाओं से भुजा मिलाकर मन्द गिरती हुई यमुना स्नान के लिये चलने लगीं। स्तनभार से वे सब पीड़िता थीं तथा निरन्तर मुरारि के चरित्रों का गान करती थीं॥ ४। ५॥

अनन्तर गोपाङ्गनाएं किनारे को छोड़ कर जंघा तक जल में हाथों से जल को हिला कर घड़ों में पानी भरने लगीं तथा कुछ किनारे की ओर बढ़ कर अल्पजल में उन घड़ों को एकत्र रख लिया॥ ६॥

उत्
तत्तुल्यवेलमधि जानुपयः प्रवाहे
शश्वद्विधूय तरसा पयसा प्रपूर्य्य ।
तस्माच्च किञ्चिदवकाशजले कराभ्यां
गोपाङ्गना भुजघटीं घटयाम्बभूवुः॥६॥
ततः कृष्णो दूरे ता निरीक्ष्य सस्मितः-
इहैव कन्दर्पकलानुकूले कदम्बमूले निभृतो भवामि ।
कूले दुकूलं विनिधाय नीरे गोपाङ्गना मज्जनमाचरन्तु ॥७॥
ततः कूले दुकूलं निधाय निमज्जन्ती काचिदुच्चैरुवाच-
मा मज्ज मा मज्ज जले मृगाक्षि गृहाण चेलं सहसा विबुध्य ।
आयाति सोऽयं व्रजसुन्दरीणां निचोलचौरः पुरतः किशोरः ॥८
ततो ऽसम्भ्रमं निरूप्य तां कृष्णस्तत्रैव मायया ऽन्तर्दधौ-ततस्तु-
सखीगणैस्तत्र निरूप्य यत्नात् पुंसां विहीना विदिशो दिशोऽपि ।
आदाय कूले वनिता दुकूलं पयः प्रवाहे सरसं ममज्जुः ॥ ६ ॥

उधर श्रीव्रजराजनन्दन दूर से गोपबालाओं को देख कर हँसते हुए सोचने लगे । मैं अब यहाँ ही कन्दर्पक्रीड़ा के अनुकूल कदम्ब के नीचे छिप कर रहूँगा । गोपाङ्गनाएं घाट पर वस्त्र रख कर यमुना में स्नान करेंगीं । उससे मेरी अभिलाषा सिद्ध होगी ॥ ७ ॥

अनन्तर गोपाङ्गनाऐं किनारे में वस्त्र रख कर स्नान करने लगीं । उन में से कोई रमणी ऊँचे स्वर से कहने लगी कि हे मृगाक्षि ! अधिक जल में डूब कर मत स्नान करो मत स्नान करो । शीघ्र ही उठ कर अपने वस्त्र को सम्भालो । क्योंकि व्रजसुन्दरियों के वस्त्रचोर वह गोपकिशोर आगे आ रहा है ॥८॥

अथ श्रीकृष्ण गोपाङ्गनाओं को सावधान देख कर वहाँ लीलामात्र से अन्तर्द्धान हो गये । वनिताओं ने सखियों के द्वारा इधर उधर अनुसन्धान कर देखा कि वह प्रदेश अत्यन्त निर्ज्जन तथा

नीपशाखिविटपोपरि वाम वाहुमूलमुपधाय शयालुः ।
गोपिका निभृतवीक्षणकामः स्वापमाप कपटेन मुरारिः ॥१०॥

वहुल जल विहार व्याकुलानां निपीत
स्फुटकमलमधूनां मुग्धगोपाङ्गनानाम् ।
पुलिन मपि विलोक्य स्मेरवक्त्रारविन्दो
वसनमथ मुकुन्दो हर्तु कामो वभूव ॥ ११ ॥

लघु लघुनवनीपान्नीपपुष्पावतंसः
सुरत समरसिंहः स्मेरवक्त्रारविन्दः ।
चकित चकितमासां शश्वदुद्वीक्ष्यमानो
व्रजयुवतिनिचोलं चोरयामास कृष्णः ॥ १२ ॥

ततो दुकूलानि कूलेऽनालोक्य राधा जगाद-

कूले कलिन्द दुहितुर्निहितं निचोलं
नालोकितं सपदि केन जनेन नीतम् ।

पुरुषों से रहित है। अतः वे सब निश्चिन्त हो कर तट पर वस्त्रों को रख यमुना प्रवाह में सरस स्नान करने लगीं ॥ ९ ॥

उधर श्रीमुरारी कदम्बवृक्ष में वामभुज को स्थापित कर कपट शयन करते हुए निभृत में गोपाङ्गनाओं को देखने लगे ॥ १० ॥

अनन्तर श्रीमुकुन्द मन्दहास्य करते हुए-अधिक जलविहार में आसक्ता, कमलों का मकरन्द पानकारिणी मोहित गोपाङ्गनाओं के वस्त्रों का हरण करने लगे। नीपपुष्पों से भूषित, सुरत समर के सिंह, मन्द मन्द हास्यकारी श्रीकृष्ण ने धीरे धीरे भय भीत से नीप वृक्ष से उतर कर तथा गोपाङ्गनाओं को देखते हुए उनके वस्त्रों का हरण किया ॥ ११ । १२ ॥

अनन्तर वस्त्रों को तट पर न देख कर श्रीराधा कहने लगीं। कलिन्दनन्दिनी के तट पर हम सब ने वस्त्रों को रखा था, अब वस्त्र सब कहाँ गये, न जाने किसी ने ले लिये ? स्वभाव से गुरुजन रोषा-

श्वश्रूमुखं सहजरोपवशारुणाक्षं
द्रक्ष्यामि हन्त सहसाथ कृतापराधा ॥ १३ ॥
अपिच—आगन्तुमत्र गुरुणा बहुधा निषिद्धा
हा हा तथापि यमुनां यदुपागताऽस्मि ।
प्राप्तं मया तदनुरूपफलं न जाने
किम्वा फलान्तरमुपैमि गृहे गुरुभ्यः ॥ १४ ॥
तत उतीर्य्य पुरोऽवलोक्य कृष्णं प्रति—
माधव माधव विदूरमिदं दुकूलं
आदाय कूलनिहितं मिहिरात्मजायाः ।
ज्ञातोऽसि चञ्चल निवृत्तिमुपैहि सद्यो
भद्रं भविष्यति न ते विदिते नृपेण ॥ १५ ॥

धिक्य के कारण अरुणनेत्र से देखते हैं। नहीं जानती हूँ आज भाग्य में क्या बीतेगा ? इस अपराध की निष्कृति कैसी होगी ॥ १३ ॥

और भी सुनिये—यहाँ आने के लिये गुरुजन ने अनेक कुछ निषेध किया था, हाय तो भी मैं यमुना में आई हूँ। गुरुजन के वचनों को नहीं मानने का फल मिल रहा है। नहीं जानती हूँ आगे घर में गुरुजनों से क्या फल मिलेगा ? इससे गुरुजन बहुत कुछ सुनावेंगे ॥ १४ ॥

अनन्तर आपने जल से किनारे में जा कर श्रीकृष्ण को देखा तथा उन को कहने लगीं। हे माधव ! तुम दूर में मत छिपो, हम सब यमुना के तट पर वस्त्रों को रख कर स्नान कर रही थीं। तुम ने वस्त्रों को छिपाया। अब शीघ्र ही उन वस्त्रों को लाओ। हे चञ्चल! अब हम सब इस प्रकार मन्द कर्म्म करने वाले तुमको नहीं छोड़ेंगी। यदि यहाँ का राजा इस बात को सुन लेगा तब तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥ १५ ॥

कृष्णः स्मित्वा–नीपे निधाय वपूरु स्वतः दक्षिणांशं
सख्यांशलम्बि मणिकुन्तलमानतभ्रूः ।
आलोलमङ्गुलिदलैर्मुरलीं मुरारी
रापूरयन् व्रजवधू हृदयं जहार ॥ १६ ॥
मञ्जुहास परिहासपेशलः कौतुकान्नवकदम्बशाखिनम् ।
आरुरोह सरसीरुहाननो मन्द मन्दगतिः नन्दनन्दनः ॥१७॥
आहूय गोपीरवधूय पाणिं स्मेराननो नन्दसुतो जगाद ।
उत्थाय कूले नवनीपमूले मत्तो दुकूलं नयतानुकूलम् ॥१८॥
आकर्ण्य वाणीं बनितास्तदानीं व्रीड़ाविनम्रा यदुनन्दनस्य ।
परस्परं स्मेरमुखारविन्दं बिलोकयन्ति स्म तदा तरुण्यः॥१६॥
ततः क्षणं विभाव्य तमूचुः—
आगत्य कूले वसनं विदेहि सर्व्वासु दासीषु दयां विधाय ।

श्रीकृष्ण मन्दहास्य करते हुए कदम्बतरु में शरीर का भार दे कर चञ्चल अँगुलिदलों से मुरलीछिद्रों को दाब कर उसको बजाने लगे। सखा के कन्धे में आपका कन्धा संलग्न था। मणि जड़ित कुन्तलों से आप शोभायमान थे। लम्वायमान भ्रू से आपकी शोभा अधिक रही॥ १६ ॥

मनोहर हास्य परिहास में पटु, कमलनयन नन्दनन्दन कौतुक से मन्द मन्द गमन करते हुए कदम्बवृक्ष में चढ़ गये। आप हँसते हँसते हाथों को हिलाते हुए गोपियों को बुला कर कहने लगे–हे व्रजबालाओं तुम सब जल से उठ कर कूल के लिते आओ। इस कदम्ववृक्ष के नीचे आकर हम से अपने अनुकूल वस्त्रों को ले जाओ॥ १७। १८॥

उस समय व्रजबालाऐं यदुनन्दन श्रीहरि का इस प्रकार बचन सुन कर लज्जा से अपने अपने मुख नीचे करने लगीं तथा परस्पर मुखावलोक करती हुई खड़ी हो गयीं॥ १६॥

तीव्रप्रतापाय नृपाय यावद्भवच्चरित्रं न निवेदयामः ॥२०॥

कृष्णः सरोषः ततः किं—

दास्यो भवत्यो यदि मे युवत्यस्तदेत्य गृहीत निजांशुकानि।
नोचेन्न दास्ये वसुधाधिनाथः किम्वा विधातुं क्षमते तदर्थम्॥२१

ततः क्षणं विचिन्त्य कुलनलज्जा एतदनुवन्धिन्यः तरुण्यो नान्यथा इति विचिन्त्य—

अधः समागत्य कराम्बुजाभ्यां कुचौ कठोरौ पिहितौ निधाय।
व्रीड़ानुतास्तावद मन्द मन्द मुत्तेरुरुच्चै र्यमुनाप्रवाहात्॥२२

कृष्णः स्कन्दोपरि वासांसि निधाय तरोरवरुह्य तासामन्तिकं जगाम। ततस्ताः प्रति—

उन्मील्य पश्यत दृशः सरसास्तरुण्यः
गृहीत वस्त्रमिह पाणियुगं प्रसार्य्य।

अनन्तर क्षण काल सोचती हुईं श्रीकृष्ण के लिये कहने लगीं। हे श्रीकृष्ण ! तुम हम सब दासियों के ऊपर कृपा रखते हुए स्वयं ही तट पर आकर वस्त्रों को दे जाओ। नहीं तो तीव्रप्रतापी राजा के लिये आपके इस चरित्र को सुनावेंगीं ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण कुछ क्रोध करते हुए कहने लगे। उससे हमारा क्या हो सकता है ? हे युवतियों ! यदि तुम सब हमारी दासी करके स्वीकृता हो रही हो तो स्वयं आकर निज निज वस्त्रों को लेओ। यदि नहीं आती हो तब हम एक भी वस्त्र नहीं देंगे। इस विषय में राजा महाशय हमारा क्या कर सकता है ॥ २१ ॥

अनन्तर क्षण काल विचार करती हुईं लज्जा परायणा तरुणियाँ यमुनाजल से कदम्ब के नीचे आकर निज हस्त कमलों से कुचों को ढ़क कर खड़ी हो गयीं ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण कन्धे पर उन के वस्त्रों को धर कर वृक्ष से नीचे आ गये तथा उनके निकट में जाकर कहने लगे। हे युवतियों अपने

नाचेत्तरोरुपदधामि कदाचनाहं
मा यामि गच्छत पुन र्यमुनाजलेषु ॥२३॥

ततस्तत्श्रुत्वा वनिताः क्षणमेव नतमुखी भूय कृष्णं मैवं कृष्णस्त देव पद्यं पठति। गोप्यस्तद्वाक्यं पौरुषं प्रतिभाव्य—

उन्मील्य नेत्रयुगलं स्मित सुन्दरास्याः
सुव्रीडितं मुररिपोर्मुखमीक्षमाणाः।
तत्रैव पाणिकमलैः कतमं प्रसार्य्य
संप्रार्थयन्ति वसनं सरसास्तरुण्यः ॥२४॥

कृष्णः सरहस्यं मैवं पाणी प्रसार्य्य प्रार्थयताम् गोप्यस्तदाकर्ण्य—

वामोरुणातिगुरुणा नतवक्त्रमन्य
मूरुं विधाय पुलकाङ्कितमुद्वहन्त्यः।
पाणी प्रसार्य्य पुरतो यदुनाथ देहि
वासांसि सस्मितमिदं प्रमदाः समूचुः ॥२५॥

अपने नेत्रों को खोल कर देखिये तथा हाथों को पसार कर वस्त्रों को लीजिये। नहीं तौ मैं वस्त्रों को लेकर फिर वृक्ष में चढ़ जाऊँगा तथा तुम सब जमुनाजल में चली जाना ॥ २३ ॥

अनन्तर उनके इस प्रकार वचन सुन कर व्रजबालाऐं क्षण काल नतमुखी हो श्रीकृष्ण से कहने लगीं कि ऐसा नहीं होगा। श्रीकृष्ण पुनः उसी बात को दौराने लगे। गोपियाँ श्रीकृष्ण के इस हठ को जान कर अपने नेत्रों को खोल कर उन के मुख को देखने लगीं। वे सब मन्द हास्य से सुन्दर मुखवाली तथा लज्जापरायणा थीं। उन में से कुछ तो हाथों को किञ्चित् पसार कर श्रीकृष्ण से वस्त्रों की प्रार्थना करने लगीं ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा-इस प्रकार नहीं, हाथों को लम्बा पसार कर प्रार्थना कीजिये। गोपियाँ श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचन को सुन कर निज निज स्थूल वाम उरु से अन्य उरु को ढक कर आगे हाथ को

कृष्णः पुनः पुनर्व्विहस्य मैवं-

कृष्णो ऽब्रवीत्तत्र विहस्य मैवं दण्डायमानौ चरणौ निधाय
प्रसार्य्य पाणी रमणीसमूहाः यूयं पुनः प्रार्थयतांशुकानि ॥२६॥

ततस्ताः क्षणं विमृश्य का गतिरिदानीं । ततस्तासां-

गोपीनां निभृततनोर्व्विशेषशोभा
मालोक्य स्मितवदनस्तथापि ताभ्यः ।
स्वेदान्तः पुलकयुतो कराम्बुजेन
प्रत्येकं वसनमिदं ददौ सुनन्दः ॥ २७ ॥

आलिङ्गनानि निविडानि च चुम्बनानि
तस्मादवाप्य यदुनन्दनतोऽशुकानि
साङ्केतिकं कमपि कुञ्जगृहं विधाय
सानन्दमिन्दुवदना स्वगृहाणि जग्मुः ॥२८॥

प्रसारित करके "हे यदुनाथ अब तो वस्त्रों को दीजिये" इस प्रकार कहने लगीं। वे सब नतमुखी तथा पुलकावली से शोभायमाना थीं ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण बार बार हँसते हुए फिर कहने लगे। ऐसा नहीं होगा। दोनों चरणों को सीधा करके हाथों को प्रसारित कर वस्त्रों को माँगिये ॥ २६ ॥

अनन्तर "अब क्या दशा होगी ?" इस प्रकार गोपियाँ विचार करने लगीं। श्रीकृष्ण उस समय गोपियों की उस मनोहर शोभा का मन्द हास्य के साथ अवलोकन करते हुए पुलकावली से विभूषित हो गये तथा निज करकमलों से वस्त्रों को लाकर प्रत्येक को देने लगे ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण ने सब का आलिङ्गन-चुम्बन दिया। वे सब चन्द्रवदनी ब्रजबालाओं ने उन से आलिङ्गन-चुम्बन का लाभ कर वस्त्रों को प्राप्त किया तथा संकेत के द्वारा मिलन स्थान की सूचना दे कर

इति श्रीगोपालभट्टविरचिते प्रेमामृते वसनचौर्य्य-
केलिवर्णनं नाम प्रथमखण्डं समाप्तम् ।

ततो दिनान्तरे दधिविक्रयणार्थं मथुरां व्रजन्तीनां भारं गृहीतुमग्रतः
तत्र कृष्ण उपससार-

राधानुरोधवसतो निजलीलया च
स्कन्धे विधाय दधिभारमपारमायः ।
कौतूहलेन कपटेन च मन्द मन्दं
कृष्णः कलिन्दतनयातटमाजगाम ॥ १ ॥

राधा निखिलभारिणं पश्चादुत्तीर्णं कृष्णमालोक्य जगाद-

आदाय भारमखिलं किल राजधानी
मेणीदृशः सरभसं सरसाः प्रयाताः ।
गत्वा च ताः प्रथमतो यदुनाथ तत्र
तक्रादिविक्रयणमङ्गलमारभन्ति ॥ २ ॥

प्रसन्नता के साथ अपने अपने गृह के लिये गईं ॥ ८ ॥

उसके पश्चात् एक दिवस व्रजबालाऐं दधि बेचने के लिये मथुरा जा रहीं थीं। श्रीकृष्ण उन के भार ग्रहण के लिये आगे उपस्थित हुए। आप श्रीराधिका के अनुरोध वश तथा अपनी लीला से कन्धे में दधि भार रख कर कौतुक के वश कपट करते हुए मन्द मन्द गमन के द्वारा जमुना तट पर पहुँचे। क्योंकि वे अपारमाया वाले थे अर्थात् उनकी लीला का कोई पार नहीं था ॥ १ ॥

श्रीराधिका समस्त भार धारणकारी श्रीकृष्ण को पीछे से आते हुए देख कर कहने लगीं-देखिये, व्रजयुवतियाँ भार सब लेती हुई राजधानी में वेग से पहुँच गयी हैं। हे यदुनाथ ! वे सब मथुरा में पहुँच कर दही-दूध-तक्रादि बेचने का प्रारम्भ कर चुकीं ॥ २ ॥

ततः किं विलम्बसेऽपरञ्च–
क्रीते जनेन सुलभे नवनीत–तक्रे
क्रेता पुनः सुलभदुर्ल्लभ एव भावि।
तद्गच्छ वत्सलतया मथुरानगर्य्यां
तक्रादिविक्रयणमाशु यथाभ्युपैमि ॥३॥
कृष्णः क्षणं विश्राम्य–
पादद्वन्द्वं न चलति चलापाङ्गि मे स्कन्धयुग्मं
भूयो भूयः स्वदति. महतीं वेदनामभ्युपैति।
शुष्यत्युच्चैस्तरणिकिरणश्रेणिभिस्तन्वि कण्ठं
तद्विश्राम्यं रचय चपले मञ्जुकुञ्जोदरेऽस्मिन्॥ ४ ॥
राधा कृष्णं प्रति कियद्दूरं गच्छ कृष्णः कानिचित् पदानि गत्वा–
सीदामि सुन्दरि पयो दधिभारखिन्न
स्त्वञ्चापि पीवरपयोधरभारखिन्ना।

तुम क्यों विलम्ब कर रहे हो। नवनीत-तक्रादि बिक जाने पर अर्थात् दही-दूध बाजार से उठ जाने पर फिर लेने वाला कोई नहीं रहेगा। अतः हमारी वस्तु का ग्राहक नहीं मिलेगा। किम्वा अल्प दाम में वे सब वस्तु बिक सकती हैं। इसलिये तुम कृपया मथुरा के लिये शीघ्र चलो जिस से कि हम पहले ही बेच सकेंगीं ॥३॥

श्रीकृष्ण कुछ समय बिश्राम कर कहने लगे। हे चञ्चल अपाङ्गवाली? क्या करूँ मेरे दोनों चरण नहीं चल रहे हैं। दोनों कन्धे महान वेदना को प्राप्त कर रहे हैं। हे सुकुमारि! रविकिरणों से कण्ठ अत्यन्त सूखता जा रहा है। अतः हे चञ्चले! इस मनोहर व्रजनिकुञ्ज में क्षण काल विश्राम कीजिये ॥ ४ ॥

श्रीराधा श्रीकृष्ण के लिये "कुछ दूर चलो" ऐसा कहने लगीं। श्रीकृष्ण कुछ दूर चल कर अर्थात् दस-बीस कदम बढ़ कर कहने लगे। हे सुन्दरि! मैं कष्ट पा रहा हूँ। दूध-दही के भार से श्रान्त

तन्मन्दमारुतसुखे क्षणमत्र कुञ्जे
विश्राममात्रजतु वार्जदलायताक्षि ! ॥ ५ ॥

राधा सरोषमिव–

यत्नात् कथञ्चन कियन्ति पदानि गत्वा
स्कन्दे जनार्दन परिश्रममातनोषि ।
जाने पुनः पुनरहं वहुधा तथापि
त्वां भारिणं कपटचारिणमादधामि ॥ ६ ॥

कृष्णो नाहं कपटी किन्तु–

भारं नितम्वकुचयोरनिशं वहन्ती
न श्राम्यसि त्वमवसे कमलायताक्षि ! ।
तेनात्र कर्म्मणि मया विहितः प्रयासः
को वेद दुग्धदधिभारभरो गरीयान् ॥ ७ ॥

राधा यद्येवं तदा–

हो रहा हूँ । तुम भी स्थूल पयोधर के भार से परिश्रान्ता हो रही हो । अतः हे कमलदल की भाँति विस्तार नेत्र वालि ! मन्द मन्द पवन से सुखमय इस कुञ्ज में क्षणकाल मात्र विश्राम कीजिये ॥५॥

श्रीराधिका कुछ रिसाती हुई किसी प्रकार कुछ कदम बढ़ कर कहने लगीं । हे जनार्दन ! तुम्हारे कन्धे श्रान्त हो गये हैं । तुम भी परिश्रान्त हो रहे हो । मैं तुमको बार बार पहिचानती हूँ । तौ भी जान समुझ कर कपटी तुम को इस कार्य्य में नियुक्त किया हूँ ॥६॥

श्रीकृष्ण कहने लगे । हे कमल की भाँति चौड़े नेत्रवालि ! मैं कपटी नहीं हूँ परन्तु तुम नितम्ब–कुचों के निरन्तर वहन करने पर भी नहीं श्रान्ता हो रही हो । जिस से इस महान कार्य्य में नियुक्त कर रही हो । मैं नही जानता था कि दूध–दही का इस प्रकार भार होता है ॥ ७ ॥

भारं जहीहि यदुनन्दन मन्दमन्द
मागच्छ गच्छ परिरक्षितुमत्र वत्सान् ।
अन्यं धुरीणमिह धुर्व्वहनप्रवीणं
गृह्णामि येन सहसा मथुरां व्रजामि ॥ ८ ॥

कृष्णो विहस्य युक्तमेव–

अन्यो धुरीणो व्रियतां प्रवीणो त्वया न विश्राम्यति यः पदव्याम् ।
मृगाक्षि विश्राम्य तले तरूणां शक्नोमि गन्तुं मथुरानगर्य्याम् ॥९॥

ततो राधा सरोषसाक्षेपमात्मानं प्रति—

दोषो ममैव नितरां यदितो धुरीण
मन्यं विहाय यदुनाथ भवान् गृहीतः ।
विश्राम्यतामिह तु नाथ तले तरूणां
वेला गता हि दधिविक्रयणक्रियायाः ॥१०॥

श्रीराधा कहने लगीं, हे यदुनन्दन ! यदि ऐसा ही है तो भार छोड़ दीजिये। क्योंकि इस प्रकार मन्द गमन से मेरा अनिष्ट होगा। तुम तो जाओ, अपने बछड़ाओं को चराओ। मैं तो भार-वहन में प्रवीण अन्य किसी भारवाही को इस कार्य्य में लगाती हूँ। जिस से शीघ्र मथुरा जा सकती हूँ ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे। तुम उचित कहती हो। अन्य किसी प्रवीण भारवाही को नियुक्त कीजिये जो कि मार्ग में विश्राम नहीं कर सकता है। हे मृगनयनि ! वृक्षों के नीचे कुछ समय विश्राम करता हूं। जिस से मैं मथुरानगरी को सुख में गमन कर सकता हूं ॥ ९ ॥

अनन्तर श्रीराधा रिसाती हुईं निज के लिये कहने लगी। इस विषय में मेरा तो दोष है। क्योंकि इस कार्य में किसी प्रवीण को न लगाय कर आप को लगाया है। हे नाथ ! विश्राम कीजिये। इन वृक्षों के नीचे सुख में बैठिये। क्योंकि दही बेचने का समय बीत गया है ॥ १० ॥

भगवान एवं श्रुत्वा भारं निक्षिप्य क्षणं विरराम। तत्र राधा विश्रान्तोऽसि भारमादाय व्रज कृष्णस्तु महान्तं भारं उद्वोढुमक्षमः-

तस्मात् कियन्ति नवनीत पयो दधीनि
भुंक्तानि चेदिह भवन्ति मया त्वयापि।
भारो लघुस्तदनुनीतं सुभक्षणेन
पारं कलिन्ददुहितुः कमलायताक्षि ॥११॥

राधा विचिन्त्य साक्षेपमात्मानं प्रति-

इह हि बहुल दीना गोकुले धूप्रवीणाः
कति कति च युवानः सन्ति ते ते धुरीणाः।
तदपि कपटचारी गोपनारी-विहारी
कथमिह बनमाली हन्त भारं गृहीतः ॥१२॥

ततः कृष्णं प्रति यथा रोचते तथा क्रियतां येन भारश्चलति। कृष्णस्तं गृहीत्वा दीर्घमूष्णं निश्वस्य पुनर्भूमौ चिक्षेप। तत्र क्षणं

श्रीकृष्ण एसा सुन कर भार फेंक कर क्षण काल विश्राम करने लगे। श्रीराधा कहने लगीं-अब तो विश्राम कर लिया है, भार लेकर चलिये। श्रीकृष्ण ने कहा-यह भार महान है। मेरी इस के वहन में शक्ति नही है। अतः कुछ नवनीत-दूध-दही का भोजन करने पर भार लघु हो जाऐगा। आइये कुछ तो इन वस्तुओं का भोजन कीजिये। पश्चात् सुख से यमुना पार हो कर मथुरा नगरी के लिये चलेंगे ॥ ११ ॥

श्रीराधा चिन्ता करती हुई अपने के लिये कहने लगीं। इस गोकुल में भारवहन में प्रवीण, गरीब, कितने युवक मौजूद हैं। तो भी कपट आचरणकारी, गोप नारियों के बिहारी, श्रीबनमाली ने भार का ग्रहण किया है ॥ १२ ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण के लिये कहने लगीं। जैसी आपकी रुची है एसा कीजिये। जिस से भार जा सकता है। श्रीकृष्ण पुनः भार

विश्राम्य स्वयमेव गृह्यतां नाहं उद्वोढुं क्षमः । राधा विचिन्त्य केयमनर्थप्रवृत्तिः । राधा-पणमधिकं प्रयच्छामि यत्नात् गृह्यतां कृष्णस्तु स्मित्वा नैवं। पुनर्व्विचिन्त्य हे सुन्दरि यद्येवमनुवर्त्तते तदाकर्ण्यतां ।

भारो महानेव पुन र्यदि स्यात् पणो मनोभूरिह तेऽभिलाषः।
तदा धुरीणोऽस्मि न वा प्रवीण मन्यं धुरीणं च पणो गृहाण ॥१३॥

राधा सलज्जास्मितं—कोऽयं व्यवहारो वेतन ग्राहिणामियानभिलाषः। कृष्णः सुन्दरि ! महा गरीयान् भारस्तदन्यं गृहाण इति भारं तत्र निक्षिप्य सरोषमिव चलितः। राधा आगच्छ-

क्षिप्रं भविष्यति मनस्तव पूर्णकामं

को कन्धे पर लेकर ऊँचे गरम निश्वास छोड़ कर पृथ्वी में फेंक देने लगे। कुछ समय आप विश्राम करके श्रीराधिका को कहने लगे—आप स्वयं ली जिये। मेरी भारवहन में शक्ति नहीं है। श्रीराधा चिन्ता करने लगीं। हाय ! क्या अनर्थ हुआ है। पुनः आप ने श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! मैं तुमको अधिक से अधिक पण देऊँगी। तुम यत्न से भार उठाओ। श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे ऐसा नहीं होगा। फिर विचार करते हुए कहने लगे—हे सुन्दरि ! यदि ऐसा ही चाहती हो तो सुनिये। यह महान् से महान् भार है। मेरी इस का वहन में शक्ति नहीं है। परन्तु तुम अधिक पण देने की इच्छा करती हो। वह पण तो कन्दर्प क्रीड़ा हो सकती है। इस विषय में मैं बहुत प्रवीण हूं। आप भी इस कार्य्य में अन्य किसी को नियुक्त मत कीजिये ॥ १३ ॥

श्रीराधा लज्जा करती हुईं रोष के साथ कहने लगीं—यह व्यवहार तुम्हारा बहुत अनुचित है। अहो ! वेतनधारियों का इस प्रकार अभिलाष होता है। श्रीकृष्ण कहने लगे—"हे सुन्दरि ! यह भार महान है। यदि इसको जानने में तुम असमर्था हो, तो अन्य

भारं भ्रमादपि न वा सुतरां चरामि ।
भारं गृहाण यदुनन्दन मन्दमन्दं
त्वं गच्छ वत्सलतया मथुरानगर्य्याम् ॥ १४ ॥

कृष्णो विहस्य तर्हि गृहीत पण एव गच्छामि। राधा क्षणं व्रीडानम्रमुखीभूय निरुत्तरानुमतिदत्तवती तत स्त्वां समीपमासाद्य-क्षणं सुरतरभसमानसो मुरारि र्जनरहिताः परितो देशो निरूप्य।
समुदितपुलकावलिः प्रचण्डे चटुभृशं सहसा चुचुम्ब चण्डे॥ १५ ॥

ततो विविधमन्मथक्रीडां तत्र निकुञ्जे समनुभूय तक्रादि-विक्रयार्थं राधया सह मथुरां ययौ। तत स्तत्र राधास्थाने भारं निक्षिप्य शीघ्रं जरातुरां तरणिमादाय पारार्थं स्थितः ॥१६॥

इति गोपालभट्टविरचिते भारखण्ड नाम द्वितीयखण्डं समाप्तम् ॥

किसी को लाइये"। ऐसा कहते हुए आप वहाँ भार फेंक कर रोष के साथ चलने लगे।

श्रीराधिका कहने लगी। आओ आओ, शीघ्र ही तुम्हारी मनः कामना पूर्ण होगी। मैं भ्रम से भी तुम्हें फिर इस कार्य्य में नहीं लगाऊँगी। हे यदुनन्दन! अब तो भार लीजिये। मुझ पर कृपा कीजिये। शीघ्र मथुरा के लिये चलिये॥ १४॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे यदि तुम मेरे पण को स्वीकार करती हो तो पहले पण का दान दीजिये। मैं तो पण लेकर जाऊँगा। श्रीराधा क्षण काल लज्जा से नतमुखी हो कर निरुत्तर अनुमति होने लगी। श्रीमुरारी राधिका के निकट आकर चार ओर जन शून्य देख हठात् उन के गण्डों में चुम्बन देने लगे। उनका मनः सुरत वेग से परिप्लुत हो गया था तथा वे पुलकावली से परिवेष्टित हो गये थे॥ १५॥

अनन्तर उस निकुञ्ज में विविध काम क्रीड़ा का आस्वादन करते हुए तक्रादि विक्रयार्थ राधिका के साथ मथुरा के लिये चल

विक्रीय तक्रमचिरेण निवर्त्तमानां
राधां सुधाकरमुखीमभिवीक्ष्य दूरे।
कूले निधाय तरणीं सहसा मुरारि
र्धूलीग्रहं तरणिजापुलिने तनोति ॥ १ ॥

राधा सुदूरमागत्य कृष्णं प्रति—

क्षणं धूलिक्रीडां परिहर समारुह्य तरणीं
मुरारे चण्डांशुश्चरमगिरिचूडामणिरभूत्।
पुरः प्राचीद्वारे बहुल जनसञ्चारोभविता
स्फुरद्विद्युन्मानं किमु खल कुलं नाकलयसि ॥ २ ॥

कृष्णः स्मित्वा राधां प्रति-

दिये। अनन्तर वहाँ श्रीराधिका के निकट भार उतार कर यमुना के तट में आये तथा वहाँ एक जीर्ण नौका लेकर पार करने के लिये नाविक रूप से विराजमान हुए ॥ १६ ॥

---o---

श्रीराधिका अति शीघ्र तक्रादि विक्रय कर गोकुल के लिये चलने लगीं। श्रीमुरारि चन्द्रमुखी उन को दूर से देख कर तट पर उस जीर्ण नौका को रख जमुना पुलिन में धूली क्रीडा करने लगे ॥ १ ॥

श्रीराधिका बहुत दूर आकर कृष्ण के लिये कहने लगीं। हे मुरारि! अब तो कुछ समय धूला खेल छोड़ दीजिये अपनी नौका का सम्भालन कीजिये। देखिये। सन्ध्या आने वाली है। सूर्य्य-नारायण अस्ताचल पर्व्वत के शिखर में आ गये हैं। गोकुलनगर की पूर्व्वदिशा के द्वार में अनेक लोगों का आगमन हो रहा है। इधर बिजली चमक रही है। खल गण इधर उधर घूम रहे हैं। आप एक बार ध्यान तो दीजिये ॥ २ ॥

सरिदतिदुस्तरपारा गज्जंति धाराधरः सिरसि।
अस्तं गत इह तरणिर्वहति प्रचण्डवातावलिः ॥ ३ ॥

राधा कृष्णं प्रति–अतएव पारकर्म्मणि प्रयत्नः क्रियतां आरतस्तु दैव एव गृहिणो गृहोदरे प्रातरेव भवनं प्रयास्यसि। राधा मैतपथ पारोदवस्यं विधाय पश्य–

चुम्वति रवि र्व्वरुणाशां श्लिष्यति च खलं तडिदेषा।
आतरं नय पयोधर हारं कर्णधार सहसा कुरु पारम् ॥४॥

कृष्णः–प्रसरति झञ्झापवनश्चुम्वति चरमाचलं तपनः।
पश्य विषीदति तिमिरे रजनीर्वह्नीजरातुरा तरणिः ॥ ५॥

अद्य तावदेव गृही गृहे तिष्ठ प्रात र्यास्यसि।

राधा–किम्वातरं न विचरामि कदा मुरारे

श्रीकृष्ण हँसते हुए राधिका के प्रति कहने लगे। नदी अत्यन्त गम्भीर है। इस समय पार करना असम्भव है। देखिये मेघ मस्तक के ऊपर गर्ज्जन कर रहा है। सूर्य्य अस्त प्राय हो रहा है। प्रचण्ड वेग से वायु वहता है ॥ ३ ॥

श्रीराधा कृष्ण के लिये कहने लगीं। इस लिये ही तो मैं तुमको बुलाती हूँ। पार कराने में यत्न कीजिये। श्रीकृष्ण ने कहा–आज किसी गृहस्थ के वहाँ रहिये। प्रातः काल में अपने घर चली जाना। श्रीराधा कहने लगी–ऐसा नहीं होगा। देखिये सूर्य्यनारायण पश्चिम दिशा का चुम्बन कर रहे हैं। विजली मन्द चमक रही है। हे नाविक ! गले के वहुमूल्य हार को परिमूल्य रूप से लेकर शीघ्र पार कर दीजिये ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण कहने लगे–झंझावायु वेग से वह रहा है। सूर्य्य अस्ताचल को जा रहा है। देखिये रात्रि आ गई है। मेरी नौका जीर्ण शीर्ण हो गई है। आज किसी गृहस्थ के वहाँ ठहर जाइये। प्रातः काल होने पर चली जाना ॥ ५ ॥

रे कर्णधार यदिदं परुषं ब्रवीषि ।
एकां निशामपि परां कुलस्वामिनीना
मन्याश्रमस्थितिरियं परिवाद एव ॥ ६ ॥

कृष्णः स्मित्वा भूषणं वर्त्तते यद्येवं अवश्यं पारो विधेयस्तदेव-मेवं विधीयताम्—राधे किन्त्वेतत्पश्य—

कालिन्दीयं बहुललहरी लङ्घित व्योमदेशा
वेशाटोपं चकित हरिणीलोचने मुञ्च मुञ्च ।
एतैरेव स्तनगिरि गुरु श्रोणिभारैर्न जाने
जीर्णात्यन्तं मम तरिरियं कामवस्थामुपैति ॥७॥

राधा कृष्णं प्रति—

गव्यभार कुचभारकञ्चुकै नौर्यदि भवेद्धारकुलं तत्त्वणम्।
तदनु वारिणि स्वयं क्षेपणीयमिदमेव नान्यथा ॥८॥

श्रीराधा कहने लगीं—हे मुरारि! क्या हम पार कराने का मूल्य नहीं देंगीं। क्या हमारा विश्वास नहीं करते हो। हे नाविक! इस प्रकार कठोर वचन उचित नहीं है। कुल स्वामी परायण रमणियों की एक रात्रि ही अन्य गृह में स्थिति निन्दनीया है॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे। गले का भूषण यदि मौजूद है तब मैं अवश्य पार कर देऊँगा। तुम ऐसा करो। देखिये राधे! यह कालिन्दी अत्यधिक तरङ्ग मालाओं से मानो आकाश का स्पर्श कर रही है। हे चकित हरिणीनयने! वेशाडम्बर को छोड़ दीजिये। तुम्हारे इन स्तन पर्व्वत तथा स्थूल श्रोणि भार से मेरी अत्यधिक यह तरणी न जाने किस अवस्था प्राप्त होगी॥ ७ ॥

श्रीराधा कृष्ण के लिये कहने लगीं। हे श्रीकृष्ण! यदि गव्य-भार, कुचों के भार तथा काँचुलियों से नौका भारी हो जाती है तब मैं स्वयं गव्य-काँचोलीओं को जल में फेंक देउंगी। इस विषय में अन्यथा नहीं करूंगी॥ ८ ॥

कृष्णो भवतु तावत् इति नौकामधिरुह्य कियद्दूरं गत्वा तरणिं तरलञ्चक्रे । राधा सभयं कृष्णं प्रति—

तर तरणिसुतायामाप्यमेतद्गभीरं
तरलतरतरङ्गालिङ्गितव्योममार्गम् ।
तरलतरणिमारुह्याशुगैर्मज्जितैषा
तव पुनरति नष्टं जीवनं यौवनञ्च ॥९॥

कृष्णः स्मित्वा नापराधो मम भवत्येव—

मुग्धे पश्य गत्या स्तन घटनात् संघटणात् पवनः ।
तरणिं तरणिजागर्त्ते शशिमुखि शश्वन्नयति ॥१०॥

राधा सलज्जा कृष्णं प्रति—

श्रीकृष्ण कहने लगे—एसा ही होगा । नौका में आइये । मैं नौका चलाता हूँ । ऐसा कह कर आप श्रीराधिका को चढ़ा कर कुछ दूर नौका को चलाने लगे । पश्चात् नौका को इस प्रकार हिलाने लगे कि मानो वह डूबती जा रही है । श्रीराधिका भयभीत होकर श्रीकृष्ण के लिये कहने लगीं । शीघ्र जमुना जी का पार करो । जमुना जी अत्यन्त गम्भीर हो रही है । अति चञ्चल तरङ्गों से आकाश मानो आलिङ्गित हो रहा है । नाव तो अत्यधिक चलायमान हो रही है । यदि यह डूब जायेगी तो महान् दुर्दशा होगी । उस से तुम्हारा प्राण और मेरा भी प्राण जाता रहेगा । हाय यदि ऐसा होगा तो हम यौवन धनको खो जावेंगी ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—इस में मेरा कोई अपराध नहीं है । यह दोष आप का है । मुग्धे देखिये—हे शशिमुख ! आप के स्तन-कञ्चुलिक का स्पर्श पाकर पवन बलवान हो गया है । वह मेरी जीर्ण नाव को यमुनागर्भ में करने के लिये अर्थात् डुबाने के लिये निरन्तर चेष्टा कर रहा है ॥ १० ॥

केलिपातमपहाय सहासं किं तनोषि परिहासविलासम् ।
घूर्णते तरिरियं जलपूर्णा कर्णधार किमयं व्यवहारः ॥११॥

अपि च—

पानीयसेचनविधौ मम नैव पाणी
विश्राम्यतस्तदपि ते परिहासवाणी ।
जीवामि चेत् पुनरहं न तदा कदापि
कृष्ण त्वदीय तरणौ चरणौ ददामि ॥ १२ ॥

कृष्णः स्मित्वा—

पूर्वं मयोक्तमखिलं भवती तरिर्मे
तन्वी कथञ्चन जलद्वितयं दधाति ।
तत्रापि मातिविषमानिलमण्डनीयं
किन्त्वत्र सुन्दरि करिष्यति कर्णधारः ॥ १३ ॥

श्रीराधा लज्जिता हो कर कहने लगीं । हे श्रीकृष्ण इस समय हास्य-परिहास करना उचित नहीं है। परिहास क्रीड़ा को छोड़ दीजिये । यह तरणि जल से भर कर घूँमने लगी है । हे नाविक ! इस समय एसा व्यवहार अनुचित है ॥ ११ ॥

और भी देखिये—मेरे हाथ पानी फेंकने में विश्राम नहीं कर रहे हैं । अर्थात् पानी फेंकते फेंकते श्रान्त हो गये हैं । तो भी तुम इस प्रकार परिहास बचन नहीं छोड़ते हो । यदि मैं इस विपत्ति से जी जाऊँगी तब फिर कभी तुम्हारे नाव में पाँव नहीं धरूँगी ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे । हे रमणि ! मैंने पहले से ही आप से कहा था । यह मेरी नाव जीर्ण शीर्ण है। नहीं जाने किस समय क्या हो जायेगा ? और भी इस समय महान वेग से पवन बह रहा है। हे सुन्दरि ! इस विषय में नाविक क्या कर सकता है ॥ १३ ॥

राधा—एतावतीं तव तरिं जरतीं मुरारे
जानामि वित्ततनुकं पदमर्पयामि।
एतत्तवाभिलषितं परिपूरयामि
रे कर्णधार कुरु पारमपारकीर्त्ते ॥ १४ ॥

कृष्णः स्मित्वा सोऽहं यत्नादेव वाहयामि सुन्दरि छिद्राण्याच्छादय हृदयाञ्चलेन। राधा तथा कृत्वा कृष्णं प्रति—

गुरुच्छिद्रच्छेदे कुचयुगनिचोलक्षितिरभूत्
तथाप्यन्यच्छिद्रान्निविडतरमातिष्ठति पयः।
इदानीं प्राणान् वा जघनवसनं वा मम हरे
विहर्त्तुं वांच्छा ते वत इति वाहुभ्यांतर तरिः ॥१५॥

कृष्णः स्मित्वा जीर्णेयं तरिरिति पूर्व्वमुक्तं इदानीं कः प्रतिकारो दैवमत्र शरणं। राधा स्वगतं—

इह तरणिसुतायाः कूलमत्यन्तदूरं
विघटिततरुमूलो मारुतो नानुकूलः।

श्रीराधा कहने लगीं। हे मुरारि! तुम्हारी नाव इस प्रकार है मैं जानती हूँ। परन्तु क्या करूँगी। मैं धन-देह देने को प्रस्तुत हूँ। हे नाविक! हे अपारकीर्त्ति वाले! पार कीजिये। आप की अभिलाषा को पूरण करूँगी॥ १४॥

श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—हे सुन्दरि! अब मैं यत्न के साथ चलाता हूँ। आप हृदयाञ्चल से छिद्रों को ढाकिये। श्रीराधा ऐसा ही कर कहने लगीं—इसमें बड़े बड़े छेद हैं। उनको रोकने में मेरे स्तन वसन की क्षति हो गई। एक छिद्र को रोकती हूं परन्तु अन्य छिद्रों से जल भर जाता है। हे हरे! अब क्या इच्छा है? स्तन वसन तो बिगड़ गये हैं। केवल प्राण तथा जंघा के वसन रह गये हैं। उनको बिगाड़ना बाकी रहा है॥ १५॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे—यह मेरी नाव जीर्ण है मैं तो

तरिरियमतिजीर्णा चञ्चलः कर्णधारः
शिवशिव मम कोऽयं कर्म्मणो दुर्व्विपाकः ॥१६॥
अपिच–क्षीणा दिशो जलधरैस्तरणी सुजीर्णा
दामोदरोऽति तरलो नवकर्णधारः।
एषा कलिन्ददुहितालहरी गभीरा
हा हा तथापि तरणौ पदमर्पयामि॥ १७॥
तथापि–तरिरियमति जीर्णा कर्णधारोऽपि गोपः
सरिदति सुगभीरा भानुमानस्तमेति।
वयमपि च कुलीना बन्धुहीनाः नवीनाः
शिव शिव कथमस्याः पारमासादयामः॥ १८॥
पुनः प्रकाशं–वाचा तवैव यदुनन्दन गव्यभारो
हारोऽपि वारिणि मया सहसा विकीर्णः।

पहले से कहि आया हूँ। अब क्या प्रतीकार होना चाहिये। इस विषय में दैव ही शरण है। श्रीराधा अपने मन में कहने लगीं–यमुना का किनारा अब तो बहुत दूर है। वृक्ष सब जड़ से गिरते जा रहे हैं। प्रतिकूल पवन भी वेग से बह रहा है। नाव भी अत्यन्त जीर्ण शीर्ण है। यह नाविक अति चञ्चल है। हाय हाय यह मेरे कर्म्म की क्या मन्द दशा आगई॥ १६॥

और भी जलधर मेघों से चारों ओर व्याप्त हो रहा है। तरणि अति जीर्ण है। दामोदर अत्यन्त चञ्चल हैं। वे आज नवीन कर्णधार अर्थात् नाविक बने हुए हैं। यह कलिन्दनन्दिनी लहरियों से गहरी हो रही है। हाय इतने पर भी मैं नौका में बैठ गई हूँ॥१७॥

यह तरि (नाव) अत्यधिक जीर्ण है। इस का नाविक गोपाल है। नदी भी अत्यन्त गहीड़ा है। सूर्य्यनारायण अस्त हो गये हैं। हम सब भी कुलीन, सहायशून्य, नवीन कुलरमणियाँ हैं। हाय! हम किस प्रकार यमुना के पार होंगी॥ १८॥

दूरीकृतञ्च कुचयो रपितन दुकूलं
कूलं कलिन्द दुहितु र्न तथाप्यदूरम ॥१६॥

पुनः स्वगतं—पयः पूर्णां पूर्व्वं तदनुपवनघूर्णां च पवनै
गंभीरे कालिन्दीपयसि तरिरेषा प्रविशति।
परं हित्वा वित्रं परमतरलो नन्दतनयो
नटन् भूयो भूयस्तदपि करतालं घटयति ॥ २० ॥

परञ्च—प्रयत्नादावर्त्ते नयति तरिमत्यन्तजरतीं
मवित्रं तत्रैव त्यजति तरलो नन्दतनयः।
परं भानो र्बिम्बं चरमगिरिसूढामधिगतं
न जाने राधायाः शिव शिव विधिः किं घटयति॥२१॥

पुनर्निश्वस्य—पूरे वन्धुजनो मनागपि दयाशीलो न पीताम्बरः
स्निग्धैरम्बरलम्बिभि र्जलधरैः पीता समस्तादिशः।

आप फिर प्रकाश-रूप से कहने लगीं हे यदुनन्दन! आप के वचनों से मैंने गव्यादि तथा अमूल्य हार को भी हठात् जल में फेंक दिया। स्तनों का वसन भी दूर कर दिया। इतने पर भी नाव डूबती जा रही है। अभी भी यमुनातट दूर में है ॥ १६ ॥

श्रीराधिका फिर मन में कहने लगीं—यह नाव जल से भर गई है तथा पवनों से घूम भी रहा है। वह गम्भीर जमुना के जल में डूब जा रहा है। गव्यादि धन-राशि भी हाथ से निकल गई। इतने पर भी नन्दनन्दन चञ्चलता को नहीं छोड़ रहे हैं। वे बार बार नाचते कूदते हुए करतालि उड़ा रहे हैं॥ २० ॥

चञ्चल श्रीनन्दनन्दन इस अत्यन्त जीर्णातरी (नाव) को यत्न के साथ जल के आवर्त्त में ले जा रहे हैं तथा वहाँ पतवार को छोड़ देते हैं। हाय बडी भारी विपत्ति है। सूर्य्यविम्ब चरमगिरि शिखर में अर्थात् अस्ताचल के लिये जा रहा है। नहीं जानती हूँ आज अभागिनी राधा के भाग्य में विधाता क्या घटाता है ॥२१॥

एषा जीर्णतरा तरिस्तरणिजा पूर्णा तरङ्गोत्करै
र्नो जानेऽद्य ममागमेऽपि भविता हाहा गतिःकीदृशी॥२२
अपिच–भूयो भूयो वहति मरुतां मण्डली चण्डवेगा
जीर्णामेतां तरणिमभिता निर्भरं घूर्णयन्ति।
हारं पुण्यं अपि विनिहितं नन्दसूनो मयैतत्
क्षिप्रं क्षिप्रं सुभगभवित्रा क्षिप्यतां केलिपातः ॥२३॥
कृष्णः स्मित्वा एषोऽहं वाहयामि इत्यभिवाद्य–
न्यधितमरुणपुत्रीं पारमैत्रीं विधेहि
प्रतिमुहुरिति चाटु व्याकुलैस्तद्वचोभिः।
जलनिविडनिपात क्षुण्णमारादवित्रं
तरणि तरणिमित्रं खण्डखण्डीवभूव ॥ २४ ॥

श्रीराधा फिर दीर्घ निश्वास परित्याग कर कहने लगीं। हाय सामने वन्धुगण मौजूद हैं। पीताम्बर अल्पमात्र में भी दयाशील नहीं हो रहे हैं। तिविड़ मेघों से समस्त दिशा अन्धकार हो रही है। यह जीर्णाधिक नौका यमुना की तरङ्गावली के बीच अर्थात् यमुना गर्भ में पड़ा हुआ है। नहीं जानती हूँ कि आज मेरे आगमन में क्या दशा होगी॥ २२॥

और भी वायुमण्डली अत्यन्त वेग से बार बार बह रही है। नाविक इस जीर्ण नौका को जल गर्भ में बार बार घुमाता रहता है। हे नन्दनन्दन! मैंने भी पवित्र बहुमूल्य हार को जल में फेंका है। अतः आप हास्य-परिहास का त्याग कीजिये॥ २३॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे—अच्छा मैं नौका चलाता हूँ। "यमुना के पर पार में नौका को शीघ्र ले चलो" इस प्रकार प्रति मुहूर्त्त बार बार व्याकुलता से परिपूर्ण राधिका के वचनों से श्रीकृष्ण व्यग्र हृदय होकर इस प्रकार नाव को चलाने लगे कि—वह नाव तथा उस की क्षेपणी (पतवार) टूक टूक हो गये॥ २४॥

राधा क्रुद्धा ससम्भ्रमं कृष्णमाह। अपराधिनीं किन्तु विधि रिति जगाद-

गभीरे कालिन्दीपयसि तरणौ मग्नवपुषि
स्फुरत्तुङ्गोत्तुङ्गैः स्थमपि कमु जिविष्ठति हरे।
अतः सूर्णं पूर्णा मन विधुमुखीं नागर कर-
द्वयं कृत्वावित्रं भव तरणिपुत्रीं भगवतीम् ॥ २५ ॥

कृष्णः स्मित्वा-यदि भवति निमग्ना नौरियं वारिपूर्णा
शृणु सखि तदुपायं निर्गतोपायमुच्चैः।
भवदुरसिजकुम्भद्वन्द्वमालम्व्य यत्नात्
तरुणि तरणिपुत्रीं सन्तरिष्यामि सद्यः ॥ २६ ॥

राधा अस्तं गच्छति सूर्य्यस्तरणिसुतायामियञ्च तरणिः जीवनयौवन-मुभयोस्तदपि तवायं परिहारः॥

कृष्णः स्मित्वा सुन्दरि प्रतीकारश्चिन्त्यतां। राधा-प्रतीकारो भवानेव नाहं। कृष्णः नाहं कपटी किन्तु यौवनं पण्यं।

राधा स्मित्वा-कुरु पारं यमुनाया वारं वेपति ममाङ्गमिदम्।
आस्ते यौवन पण्यं नाथ तवास्ते यौवनं हस्ते ॥२७॥

राधा क्रोधित हो कर कहने लगीं—अपराधिनी मेरे भाग्य में विधाता ने आज क्या किया है। हे हरे! देखिये। गम्भीर जमुना जल में नाव डूबी जा रही है! क्षेपणी भी टूक टूक हो गई है। हम सब जल में मग्न हो गई हैं। हे नागर! तुम अपने हाथों को क्षेपणी बना कर भगवती यमुना का पार कीजिये॥ २५॥

श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—यदि यह नौका जल से भर कर डूब गई है तौ हे सखि! इस में से आप निकलने का उपाय सुनिये। आप के स्तन रूप कुम्भ दोनों का आश्रय कर यत्न से यमुना में तहर कर पार में आ जाऊँगा॥ २७॥

कृष्णः स्मित्वा हृदयाश्वासमासाद्य मायापुलिनं दर्शयन्-

तरुणि तरणिपुत्र्यामध्यमालम्बजातं
पुलिनमतिमनोज्ञं पश्य पश्यान्तिकस्थम्।
अतिनिबिडनिकुञ्जे मञ्जु पुञ्ज द्विरेफे
तरलपवनचेष्टे भीति लेशो न चास्ति ॥ २८ ॥

राधा विलोक्य हर्षं सूचयन्ती अरे जीवनमागतं तत्तरिं शीघ्रं वाहय। कृष्णः स्मित्वा-

अङ्गीकरोषि यदि सुन्दरि पञ्चवाण
क्रीडास्वयम्वरविधिं विधिनोपपन्नम्।

श्रीराधा ने कहा—सूर्य्य अस्त जा रहा है। यमुनागर्भ में यह नौका पड़ी हुई है। जीवन-यौवन दोनों का महान् संकट है। इतने दुःख रहने पर भी तुम्हारा इस प्रकार का व्यवहार नहीं जाता है। श्रीकृष्ण ने कहा—हे! सुन्दरि इसके प्रतीकार की चिन्ता कीजिये। श्रीराधिका ने कहा-प्रतीकार तो आप ही हैं। मैं नहीं हूँ। श्रीकृष्ण ने कहा-मैं कपटी नहीं हूँ। परन्तु यौवन का पण चाहिये। राधा हँसती हुई कहने लगीं—यमुना को पार कीजिये। बार बार मेरा शरीर भय से काँप रहा है। यौवन पण करती हूँ। हे नाथ! यह तो आपके हाथ में है ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण हँस कर हृदय को आश्वासित करते हुए लीला से एक पुलिन दिखा कर—हे प्रिये! तरणी तो यमुना में रह गई। निकट में इस मनोहर पुलिन को देखिये। यहाँ अति निविड़ निकुञ्ज विराजमान है। उसमें भ्रमर पुञ्ज मनोहर गुञ्जार कर रहा है। मन्द मन्द पवन वह रहा है। यहाँ किसी प्रकार भय नहीं है। न रात्रि का अवकाश है ॥ २८ ॥

श्रीराधा पुलिन को देख कर हँसती हुई अहो जीवन आ गया है। अतः शीघ्र ही नाव चलाइये। श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे-

वृषोऽहमिन्दुवदने करकेलिपातं
कृत्वा तदा तरणिजां तरसा तरामि ॥ २६ ॥
श्रुत्वा तदीयवचनं क्षणनम्रवक्त्रा
राधा विचिन्त्य मनसा निजगाद कृष्णम् ।
पारं विधेहि सहसा तपनात्मजायाः
कार्य्यं तवाभिलषितं भविता तथैव ॥ ३० ॥
ततः—तस्याः निपीय वचनं सरसीरुहास्याः
पीयूषपूरमिव कर्णघटद्वयेन ।
पारं विधाय सहसा कुरु केलिपातं
स्मित्वा जगाम पुलिने ललितायताक्षिः ॥ ३१ ॥
ततः तत्र गत्वा सुन्दरि पश्य मनोज्ञमीयं स्थली ।
मन्वीपरागपटलीपटवासपूरै
रापूरयन्निविडमञ्जुलकाननानि ।

हे सुन्दरि ! यदि पञ्चवाण काम की क्रीड़ा का सभाविधान स्वीकार करती हो अर्थात् मुझ से कन्दर्प क्रीड़ा करना स्वीकार करती हो तो मैं अवहेला से अर्थात् बिना चेष्टा से यमुना के पार कर देऊँगा। हे चन्द्रवदनी ! ऐसा शुभ अवसर नहीं आवेगा। दैवयोग से एसा समय उपस्थित हुआ है ॥ २६ ॥

श्रीराधिका श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचन को सुन कर क्षण काल नम्र वक्त्रा हो कर मन में कुछ विचार कर कहने लगीं—हे श्रीहरि ! ऐसा ही होगा, तुम्हारा अभिलाष पूर्ण होगा। परन्तु शीघ्र यमुना का पार कर दीजिये। कमलमुखी श्रीराधिका के इस प्रकार वचनामृत का कर्ण रूप दोनों पात्र से पान करते हुए श्रीहरि ने उसी समय यमुना का पार कर दिया। श्रीराधिका के साथ मनोहर पुलिन में पहुँचे ॥ ३० । ३१ ॥

वहाँ जाकर राधिका के लिये कहने लगे—हे सुन्दरि ! इस मनो-

चञ्चन् कलिन्दतनया जलबिन्दुयुक्त-
मायाति चेन्दुमुखि चन्दनगन्धवाहः ॥ ३२ ॥

ततस्तस्याः कुचयोः स्पर्शमालोक्य-

मृदुलं निखिलशरीरं सुन्दरि विधिना निर्म्मितं यत्नात्।
एतन्मनसिजशिल्पं यत्ते कठिनं पयोधरं द्वितयम् ॥ ३३ ॥

ततो रोमावलिरालोक्य विहस्य च—

अन्योन्यपीडामवलोक्य गाढां वक्षोजयोः सुन्दरि सीमवादे ।
मध्ये ददौ नूतनरोमराजिव्याजेन सेतुं किल मीनकेतुः ॥३४॥

पुनस्तननिर्व्वन्धं विलोक्य-

वारिप्रबन्धमिव चित्तमतङ्गजस्य
गिरीशभीतस्य हृतप्रभस्य ।

हर स्थल को देखिये। हे चन्द्रमुखी ! चन्दन गन्ध को वहाता हुआ मन्द मन्द पवन वह रहा है। यमुना के जल कणों से अत्यन्त शीतल भी हो रहा है। मिहीन पुष्पों के परागों से निविड़ मनोहर कुञ्ज कानन को सुवासित करता हुआ चारों ओर में बहता रहता है ॥ ३२ ॥

अनन्तर श्रीराधिका के स्तनों का पवन स्पर्श देख कर आप कहने लगे-हे सुन्दरि ! विधाता ने यत्न से आप के सर्व्वाङ्ग कोमल बनाए हैं। यह तो काम का शिल्प अर्थात् कारीगरी है। परन्तु आपके स्तन दोनों किस कारण से कठिन हैं नहीं जानता हूँ ॥ ३३ ॥

अनन्तर राधिका की रोमावली का दर्शन कर हँसते हुए कहने लगे-हे सुन्दरि स्तनों का परस्पर पीडन देख कर मानो मीनकेतु कन्दर्प ने सीमा विभाग करते हुए वीच में नूतन रोमराजी छल से सेतु अर्थात् पुल बाँध दिया है ॥ ३४ ॥

फिर स्तन निर्व्वन्ध को देख कर कहने लगे। हे सुन्दरि ! महादेव से भय भीत, कामदेव से पूर्ण चित्त रूप मत्त हस्ति को वश में

धैर्याय मन्दरगिरिं नवरूपरत्न-
कोषस्तनोति मम तोषकरश्चकास्ते ॥ ३५ ॥

पुनस्तथा परिहासं विधाय विविधमन्मथक्रीडां तथानुभूय भूयसावेगेन राधां यमुनातटे निधाय तत्र गत्वा राधामालोक्यालिलिङ्ग। सुन्दरि नाहं विस्मरणीयः। राधा—मम जीवनमहौषधिर्भवान् इति किमाजीवं विस्मरणीयः इत्युक्त्वा जगाम ॥ ३६ ॥

इति पारखण्डः समाप्तः ॥

ततो दिनान्तरे पुनरपि व्रजाङ्गना भारमादाय गव्यं नेतुं मथुरां व्रजन्तीः कृष्ण आलोक्य जगाद—

तत्र क्षणं विरम सुन्दरि नीपमूले
कूले कलिन्ददुहितुः करमाचकार ॥ १ ॥

लाने के लिये वारि प्रबन्ध अर्थात् (गजवन्धनी) हैं। वह धैर्य्य के लिये मानो नवीन रूप स्वरूप रत्नमय कोषागार का मन्दराचल को दे रहा है। वह मेरा तोष स्वरूप हो रहा है॥ ३५ ॥

इस प्रकार हास्य परिहास करते हुए, बिबिध कामक्रीड़ा का अनुभव करने लगे। फिर अत्यन्त वेग से श्रीराधा को यमुना तट में ले कर आलिङ्गन करते हुए कहने लगे हे सुन्दरि ? मुझको मत भूलिये। श्रीराधा ने कहा—आप तो जीवन की महौषधि रूप हैं। जीवन का आश्रय को कौन भूल सकता है। इस प्रकार कहते हुए दोनों अपने स्थानों में चल दिये ॥ ३६ ॥

अथ अन्य एक दिवस में व्रजाङ्गना भार लेती हुईं दही दूध विक्रयार्थ मथुरा जा रहीं थीं। उन्हें श्रीकृष्ण देख कर कहने लगे-हे सुन्दरि ! यमुना के तट पर कदम्ब के नीचे क्षण काल विश्राम कीजिये। जब तक मैं कर नहीं लेता हूं ॥ १ ॥

राधा-एतेन भवतः किमायातं—कृष्णः तदाकर्ण्यतां-

कंसेन भूमिपतिना महतः प्रयत्ना-
न्नीतोऽत्र कर्म्मणि करग्रहणे नियुक्तः।
तेन स्वयं शिरसि मे निहितं विचित्रं
वस्तुं विलोकय विलोलमृगायताक्षि ॥ २ ॥

राधा क्षणं सुचिन्त्य विमृश्य करयोग्यं वस्तु नास्ति का शंका विचार्यतां। कृष्णः स्मित्वा—

किं वस्तु वक्षसि निधाय पिधाय यत्नात्
चेलाञ्चलेन नयसे चपलायताक्षि।
एतद्विचारय क्वाहमिदं मदीयं
किम्वा न वा भवति तत् परिलोकयामि ॥३॥

राधा सरोषमिव-एतदधु वयसाय भवतो यत्परप्रेयसीं प्रति एतावती मुखरता धृष्टनाच-

---

श्रीराधा ने कहा—इस में तुम्हारा क्या अधिकार है? श्रीकृष्ण ने कहा-सुनिये महाराज कंस ने महान् प्रयत्न के साथ इस कर आदान कार्य्य में नियुक्त किया है। अतः आप सब स्वयं ही उचित विचार कर वस्तुओं का कर मुझे दीजिये। हे चञ्चल मृग की भाँति चौड़े नेत्रवाली! इस में विलम्ब न कीजिये ॥ २ ॥

श्रीराधा क्षण काल चिन्ता परामर्श करती हुई कहने लगीं-हमारी करयोग्य कोई वस्तु नहीं है, इसमें शंका मत कीजिये। श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे। हे चपल चौड़े नेत्रवाली! वस्त्राञ्चल के द्वारा वक्ष में छिपा कर क्या वस्तु ले जा रही हो। एक वार तो मन में विचार करो। कर लेने की कोई वस्तु है किम्बा नहीं है सो मैं देख छोड़ देऊँगा ॥ ३ ॥

श्रीराधा सरोष कहने लगीं-एसा करना तुम्हारा अनुचित है। दूसरी रमणी के लिये इस प्रकार कहना महान धृष्टता होती है।

यातो भवान् विधिवशात् यदि वाधिकारी
नो ते सदा निपतति प्रतिदं धरण्याम् ।
एतत्पुनः प्रतिदिनं प्रमितं न जाने
तत्रेदृशी स्फुरति कृष्ण कथं कुवाणी ॥ ४ ॥

कृष्णः स्मृत्वा प्रमितमेवैतत् कथं कुवाणी स्फुरति । प्रत्यक्षमेवानुभविष्यसि–

मुग्धाक्षि कञ्चुकमिदं परिहृत्य दूरे
वक्षः सरस्तु विदितं भवती विधत्ताम् ।
नो वा महीपतिकरग्रहणे नियुक्तो
देहे तव स्वयमहं करमर्पमामि ॥५॥

राधा सरोषकटाक्षं कृष्णं प्रति जगाद–

रे नन्दनन्दन कुचेष्टकरीन्द्रसिंहः
सिंहासने किमु न तिष्ठति कंसराजः ।

हे कृष्ण ! यदि दैववश आप अधिकारी हुए हैं तो भी इस प्रकार अनीति करना अनुचित हो रहा है । और भी देखिये--यह अधिकार क्या चिरस्थायी रह सकता है । इस प्रकार अनुचित व्यवहार से क्षुभित हो महाराजा आपको दण्ड दे सकता है ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—ऐसा करना मेरा उचित हो रहा है । मैं क्या करूँ ? प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि तुम कर देने की वस्तुओं को छिपा कर चली जा रही हो । हे मुग्धाक्षि ! वक्षः से चोली दूर करके दिखाइये नहीं तो मैं स्वयं ही हाथ लगा कर देखूँगा । क्योंकि महाराजा ने इस कार्य्य में मुझे नियुक्त किया है । मेरी इच्छा है । शङ्का होने पर देख सकता हूँ ॥ ५ ॥

श्रीराधा रोष के साथ टेढ़ा कटाक्ष करती हुई कहने लगीं-हे नन्दनन्दन ! हे मन्द चेष्टाकारी सिंह ! क्या कंस महाराज सिंहासन पर नहीं बैठा हुआ । क्या उसने ऐसा करने को कहा है । अपने

स्वस्याधिकारमधिगत्य कुलाङ्गनानां
देहे समर्पयितुमिच्छसि हन्त हस्तम् ॥ ६ ॥

कृष्णः सरोषं प्रायः कथामिच्छया एष दीयते करः नो वा स्वयं विचारय अङ्गीकुरु च। राधा सरोषं कृष्णं प्रति–कस्य हि स्कन्दे मस्तकद्वयं यः परीन्द्र देहे हस्तं क्षिपति।

पतिर्ममातिसुदुरन्तकारी छिद्रानुसारी नृपतिः करालः।
इतीवज्ञाय मदीयहेतोः स्वयं करं दास्यसि नन्दसूनो ॥७॥

कृष्णस्ततः किं राज्ञा वयमत्र नियुक्ता स्तत्कार्य्यमेव क्रियते त्वया करः कथं न दीयते गर्व्वो वा क्रियते भवत्या। राधा–करयोग्यं वस्तु नास्ति कस्मिन् वा ते करग्रहः। कृष्णः श्रूयतां व्यास्तेव भवत्या रत्नादिषु करग्रहः।

तथाहि–वक्षोजौ तव सातकुम्भकलसौ केशाश्च याश्चामरा
मालोक्य दशनच्छटामरकतश्रेणी च रोमावली।
अन्या द्वा निभृतं यदस्ति पवनं चेलाञ्चलेनावृता
विज्ञाय व्यावहर्त्तुमिच्छसि न चेद् दोषं न मे दास्यसि॥८॥

अधिकार को जताता हुआ कुलाङ्गनाओं का शरीर में हाथ लगाने की इच्छा करते हो ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण रोस करते हुए कहने लगे–इच्छा नहीं करता हूँ परन्तु देखिये हाथ लगाता हूँ। तुम विचार करके मान जाओ। राधा क्रोध करती हुई कहने लगीं।

हे नन्दनन्दन! मेरा पति अत्यन्त दुरन्त है, सर्व्वदा छिद्र का अनुसन्धान करता रहता है। राजा भी महान् भयानक है। ऐसा जान कर मेरे लिये तुम स्वयं ही कर देओ ॥ ७ ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण कहने लगे–उस से क्या हो सकता है। राजा ने हम सब को नियुक्त किया है।

हम उनका कार्य्य कर रहे हैं। तुम क्यों कर नहीं देती हो।

अपिच-राधे त्वदीय-हृदिकाञ्चन-कुम्भयुग्मं
लावण्यरत्नपरिपूर्णमिदं विभाति।
तस्योपरि स्फुरति मौक्तिकहारयष्टि
र्नालोकसे किमिति रत्नमयं शरीरम्॥ ६ ॥

राधा-भवतु तावत्तद्रत्नादीनां कीदृक् करस्तत्कथ्यतां। कृष्णः स्मृत्वा श्रूयतां तत्-

आलोडनं स्तनसुवर्णघटद्वयस्य
सन्दर्शनं दशनमौक्तिक-विभ्रतस्य
आकर्षणं कुटिलकुन्तलस्यात्यपारं
दंशं कठोरनयनेऽधरपल्लवस्य॥ १० ॥

देखिये गर्व्व मत कीजिये। श्रीराधा ने कहा-कर योग्य कोई वस्तु नहीं है। तुम्हारा किस वस्तु का कर लेने का आग्रह है कहो। श्रीकृष्ण कहने लगे-आप के पास विविध रत्नादि मौजूद हैं। उन का कर लगेगा। देखिये-तुम्हारे दोनों स्तन दो सुवर्ण कलस हैं। केश कलाप चौंरा है। दन्तों की छटा मानो मोतीराजि है। रोमावली मरकत मणियों की श्रेणी है। और भी अनेक वस्तुओं को वस्त्राञ्चल में गोपन करके रखती हो। अब उचित विचार करके उन सब को दिखाओ। पीछे मेरे को दोष मत लगाना। हे राधे! और भी देखिये आप के हृदय में जो सुवर्णकुम्भयुगल हैं उन में लावण्यरूप रत्न परिपूर्ण मौजूद हैं। उस के ऊपरि भाग में मुक्ता का हार विराजमान है। क्या आप नहीं देखती हो कि आप का सर्व्वाङ्ग रत्नमय है॥ श्रीराधा ने कहा-अच्छा ऐसा ही होगा, अब कहिये उन रत्नों का क्या कर लगता है? श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे-सुनिये, स्तनरूप सुवर्णकुम्भयुग का आलोडन, दसन पंक्तिरूप मुक्तासमूह का दर्शन, कुटिल केश-कलाप रूप चौंर का आकर्षण, अधर पल्लव का दंशन करना कर द्रव्य हैं॥ ८। १० ॥

राधा—श्रुत्वा तावदत्र करो न देयः नवा न पति मुग्धो कोकिलः ॥

इति—एषा वल्ली कुसुमसहितं चूतमालम्ब्य गाढं
धत्ते ऽत्यन्तं मुकुलपुलकं प्रेमगर्भं स्वनाथम् ।
पापं पायं मधु मधुकरी मालती मल्लिकानां
भ्रामं भ्रामं ललिततलितं चुम्बति प्राणनाथम् ॥११॥

ततो राधा—अन्योन्य बाहुपरिमिलितकण्ठदेशं
शश्वन्मिथः स्मरकथास्मितसुन्दरास्यम् ।
नानाद्रुममधुरगुञ्जित सङ्ग पुष्पं
कुञ्जं जगाम सहसा हरिणायताक्षी ॥

तत्र गत्वा कल्पद्रुम नवपल्लव कल्पित कल्पेषु कुञ्जमध्येषु राधा-मुरसि विनिधाय स्वपिती कृष्णः । ततस्तत्र विविधमन्मथक्रीडाम-नुभूय निजभवनगमनश्चक्रे । राधा सखिगणैः सह भारमादाय मथुरां गतवती ॥ इति दानखण्डः ॥१२॥ इतिश्रीगोपालभट्टगोस्वामिविर-चितं श्रीकृष्णप्रेमामृतं समाप्तम् ।

श्रीराधा ऐसा सुन कर कहने लगीं—तो तुम्हें एक भी कर नहीं मिलेगा। यह लता पुष्पों से रहित निज नाथ आम्र वृक्ष का आश्रय करगाढ़ पुलक मुकुल का धारण कर रही है। भ्रमरी मालती मल्लि-ओं का मधुपान करती हुई घूम रही है। वह निज प्राणनाथ मधुकर का चुम्बन कर रही है ॥ ११ ॥

अनन्तर श्रीराधा—गोविन्द दोनों ही परस्पर कंठदेश में भुजा रख कर, मधुर गुञ्जायमान भ्रमरों से परिवेष्टित पुष्पों से युक्त नाना द्रुममय कुञ्ज के लिये हठात् चल दिये। निरन्तर कामकथा तथा मन्दहास्य से दोनों का मुख-कमल शोभायमान रहा। श्रीकृष्ण वहाँ जा कर कल्पद्रुमों के नवीन पल्लवों से विरचित कुञ्ज में श्रीराधा को वक्ष में ले कर शयन करने लगे। अनन्तर वहाँ

गौड़ीयग्रन्थगौरवः—

ब्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

१—गदाधरभट्टजी की बाणी		॥)
२—सूरदासमदनमोहनजी की बाणी		॥)
३—माधुरीबाणी	(माधुरी जी कृता)	॥=)
४—वल्लभरसिकजी की वाणी		।=)
५—गीतगोविन्दपद	(श्रीरामरायजी कृत)	।)
६—गीतगोविन्द	(रसजानिवैष्णवदासजी कृत)	।)
७—हरिलीला	(ब्रह्मगोपालजी कृता)	=)
८—श्रीचैतन्यचरितामृत	(श्रीसुबलश्यामजी कृत)	५॥)
९—वैष्णववन्दना [भक्तनामावली]	(वृन्दावनदासजी कृता)	=)
१०—विलापकुसुमाञ्जलि	(वृन्दावनदासजीकृता)	।)
११—प्रेमभक्तिचन्द्रिका	(वृन्दावनदासजी कृता)	।)
१२—प्रियादासजी की ग्रन्थावली		।=)
१३—गौराङ्गभूषणमञ्जावली	(गौरगनदासजी कृता)	।)
१४—राधारमणरससागर	(मनोहरजी कृत)	।)
१५—श्रीरामहरिग्रन्थावली	(श्रीरामहरिजीकृता)	।–)
१६—भाषाभागवत [दशम, एकादश, द्वादश]	(श्रीरसजानिवैष्णवदासजी कृत)	

सानुवाद संस्कृतभाषा में—

१—अर्चाविधिः (संगृहीत) ।)

२—प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीकृत) ।)

३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता) १)

४—गोबर्द्धनशतक (श्रीविष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्य कृत) ।)

५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वतीजी कृत) १।)

६—नित्यक्रियापद्धति (संगृहीत) ॥=)

७—व्रजभक्तिविलास (श्रीनारायणभट्टजी कृत) २॥)

८—निकुञ्जरहस्यस्तव (श्रीमद्रूपगोस्वामि कृत)

९—महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता) ।–)

१०—स्मरणमङ्गलस्तोत्रं (श्रीमद्रूपगोस्वामिजीकृत) ॥=)

११—नवरत्नं (श्रीहरिरामव्यासजी कृत) =)॥

१२—श्रीगोविन्दभाष्यं (श्रीपादबलदेवजी कृत) ४॥)

१३—ग्रन्थरत्नपञ्चकम् १॥)

श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (श्री श्रीरूपगोस्वामिजीकृता)

श्रीगौरगणोद्देशदीपिका (श्रीकविकर्णपूरजी कृता)

श्रीव्रजविलासस्तव: (श्रीश्रीरघुनाथदासगोस्वामिजीकृत)

श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी कृत)

१४—श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम् (सञ्चित)

१५—ग्रन्थरत्नषट्कम् (सञ्चित) ॥)

—०—

बाबा कृष्णदास जी